R. S.

भूमिका

इन थोड़े से पृष्ठों में संत मत अर्थात् राधास्वामी पंथ की आध्यात्मिक शिक्षा का वर्णन संक्षेप में मगर व्याख्या के साथ किया गया है। साथ साथ सुरत शब्द के अभ्यास का महत्व, आवश्यक्ता और लाभ पर भी प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक उस समय लिखी गई थी जब लेखक पूर्वी देशों में भ्रमण कर रहा था।

इसमें सन्देह नहीं कि संतों की शिक्षा दिन के प्रकाश की तरह स्पष्ट है और इसी स्थिति में वह अत्यन्त सम्मान योग्य व ध्यान देने का विषय हैं मगर जो पंथाइयों और अभ्यासियों के वर्ग से बाहर हैं उनको इस तक पहुंचने का अवसर नहीं मिलता और विशेष कर जो बिना समझे बूझे हर बात पर नुक्ताचीनी करने के आदी हैं वह हमेशा ही बंचित रहे हैं। यह बात आज की नहीं है और न इस मार्ग पर आज से क्रियान्वित होना आरम्भ हुआ है किन्तु सदा से शिक्षा के मोती को अनाधिकारियों से गुप्त रक्खा गया है। जहां कहीं और जब कभी ध्यान योग को शिक्षा का क्रम चालू हुआ है इस बात का लिहाज भी होता रहा है। परम संत कबीर साहब जिन के विश्वव्यापी सिद्धान्त और उच्च विचार को दुनिया मानती है धर्मदास जी को शिक्षा देते समय कहते हैं :-

धर्म दास तोहि लाख दुहाई।
सार भेद बाहर नहि जाई॥

धर्मदास कबीर साहब के चेलों में सबसे बड़े और सम्मान योग्य समझे जाते हैं। धार्मिक और आध्यात्मिक जगत की प्रसिद्ध ज्ञाता मेडम ब्लेवटस्की (थ्योसोफीकल सोसाइटी की संस्थापक) न

सुरत शब्द योग के सम्बन्ध में खोज करते हुये इस विषय पर (बौद्धों में) २६ पुस्तकों का पता लगाया और उसके विषय पर एक सक्षिप्त मासिकपत्र लिखा है जिसका नाम वाइस आफ साइंस (हकीकत की आवाज) रखा है। इसकी भूमिका में इसने भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। उपरोक्त पुस्तकों के छटे हुये लेख के अनुवाद के समय उसको मानना पड़ा है कि ऐसी दुनियां के लिये जिस का अन्त इन्द्रियों के मण्डल तक सीमित है जो अत्यन्त स्वार्थी है, इनका अनुवाद करना व्यर्थ है क्योंकि ऐसी उच्च कोटि की शिक्षा से लाभ उठाने के लिये किसी प्रकार तत्पर नहीं है। न उसको असली रंग में ग्रहण करने की इच्छुक है। जब तक मनुष्य आत्म-ज्ञान के प्राप्त करने को पूर्णतया तैयार न हो वह इस प्रकार की शिक्षा के सुनने की ओर ध्यान न करेगी। मौलाना जलालुद्दीन रूमी सूफियों के आचार्य इसी हिदायत और नियम का वर्णन करते हैं। उनके एक शेर का अर्थ यह है कि यदि सुनने वाला नहीं हैं तो चुप रहना अच्छा है। अनाधिकारियों से आत्म रहस्य को गुप्त रखने में ही भलाई है। यह ठीक है कि अधिकारी कम हैं मगर साथ ही कहा जा सकता है कि दुनियाँ में अधिकारियों का नितान्त ही अभाव नहीं है। ऐसे लोग भी है जो बड़ी गम्भीरता से आत्म-ज्ञान के मसलों पर सोच विचार करते हैं और दृढता और परिश्रम के साथ इसके प्राप्त करने की ओर आकर्षित होते हैं। इनकी संख्या बहुत कम है मगर उन्हीं अल्प संख्यक व्यक्तियों के लाभ की दृष्टि से इस पुस्तक के लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

इसमें सन्देह नहीं कि विषय कठिन है। इसका वर्णन करना सुगम नहीं है। बहुत से ऐसे सूक्ष्म विचार हैं जिनके प्रगट करने के लिये उचित शब्द नहीं मिलते। चित्त महसूस करता है मगर वर्णन नहीं कर सकता। वाणी महसूस करती है मगर वह वर्णन करे तो क्या करे। फिर भी आशा की जाती है कि जो अधिकारी

सरसरी दृष्टि से भी इसको एक बार पढ़ेगा वह कुछ न कुछ लाभ अवश्य प्राप्त करेगा, क्योंकि इस प्रकार के अध्ययन करने का परिश्रम ही स्वयं इसका बदला है। इसके पढ़ने से मन में नये विचार उत्पन्न होंगे और विषय की खोज का और शौक पैदा होगा।

अमरीका जाने के इरादे से पहिले लेखक को सौभाग्य से परम पुरुष पं० ब्रह्मशंकर जी महाराज की अंग्रेजी पुस्तक (Discourse on Radha Swami Faith) के सरसरी में पढ़ने का अवसर मिल चुका था। इस अमूल्य पुस्तक में सन्त मत का स्पष्ट चित्र खींचने की कोशिश की गई है। जिस ढंग पर पंडित जी महाराज ने अपनी पुस्तक रक्खी है वह पुस्तक ज्ञानियों और जिज्ञासुओं के लिये है। आदि और अन्त में जो अन्तर होना चाहिये वह दोनों में मौजूद है। इसकी भाषा कठिन अधिक है मगर इसके सारांश को सरल भाषा में प्रगट करने का यत्न किया गया है।

यह पुस्तक अपनी हैसियत से केवल प्रारम्भिक पुस्तक है। हाँ, यह विचार अवश्य है कि जो बातें उसमें लिखने से रह गई हैं वह अवसर मिलने पर इस पुस्तक में विस्तृत वर्णन के साथ आ जायेंगी लेकिन आवश्यक बातें जिनके जानने की आम लोगों को लालसा हुआ करती है वह इसमें सब मौजूद हैं।

संतों का मार्ग स्वयं पूर्ण और सर्वव्यापी नियम पर आधारित है। यदि इस पुस्तक के पढ़ने से किसी को किसी प्रकार की गलत फहमी हो अथवा लेखक के इसके पूर्ण चित्र खीचने में सफलता न हुई हो तो यह उसका दोष नहीं किन्तु इसकी जिम्मेदारी लेखक की अयोग्यता माननी चाहिये।

—शिवब्रत लाल

—:०:—

R. S.

पंथ संदेश

प्रथम संदेश

सर्व साधारण का धर्म व साधुओं का विशेष धर्म

विकसित अर्थों में धर्म मनुष्य के लिये एक बहुत बड़ी बरकत है। इसकी किसी और वस्तु से तुलना नहीं की जाती। यह ऐसा अद्भुत है कि इसके मूल्य का अनुमान लगाना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। धर्म का अनुकरण और उसके उद्देश की पूर्ति और प्राप्त करने का प्रयत्न एक बड़ा पुरस्कार है। इसके द्वारा जो हार्दिक सन्तुष्टि और आध्यात्मिक आनन्द मिलता है उसका अनुमान कठिन है। धर्म की विशेषतायें केवल यहीं तक सीमित नहीं हैं किन्तु वह कुछ और भी वस्तु है। निज ज्ञान के प्राप्त करने की विद्या और अध्यात्म की वास्तविकता में प्रवेश होने का विज्ञान है। ईश्वर के साथ मनुष्य के सम्बन्ध के समझने तथा रचना और प्रकृति के उच्च और असली स्त्रोत की खोज और सत्य में प्रवेश होने की नीयत से तुम चाहे जितना प्रयत्न करते रहो, चाहे जितने हाथ पांव मारते रहो परन्तु सदैव असफल रहोगे। अध्यात्मिक राज्य में प्रवेश और उसके अन्दर धैर्य से जमे रहना केवल धर्म की सहायता से सम्भव है और किसी ढंग से प्राप्त करना महा कठिन है। धर्म हमको यह नहीं सिखाता कि परमात्मा की खोज बाहर की जावे। वह हमसे अलग नहीं है अतः उसकी खोज अपने अन्दर होनी चाहिए। इस बात को आत्मविश्वास की हद तक पहुँचाना कि परमात्मा हमारे अन्दर उपस्थित है और हमसे अलग थलग नहीं हैं धर्म का मुख्य उद्देश है।

साधारण तया मनुष्य का यह विश्वास है कि धर्म की प्राप्ती का सम्बन्ध विश्वास पर निर्भर है जिसमें बुद्धि की तर्क अनुचित है और जिसकी जांच परताल करना गलती हैं। सन्तमत में विशेष कर न इस पर कभी जोर दिया गया और न इस विषय पर व्यर्थ विश्वास करके निर्भर होने की शिक्षा दी गई। विज्ञान की अन्य शाखाओं को भांति धर्म का विषय भी स्वाध्याय और खोज चाहता है और जब तक उसके क्रियात्मक रूप पर सावधानी से दृष्टि न डाली जाय उस समय तक किसी मनुष्य को धर्म के क्षेत्र में प्रवेश और उसका अन्धेपन से अनुकरण करने की आज्ञा नहीं है। केवल आँख बन्द करके किसी विशेष प्रकार का विश्वासी हो रहना बहुत घृणात्मक विचार है जिससे मनुष्य की बुद्धि स्वाभाविक रूप से दूर भागती है और दूर रहने का अवसर ढूंढ़ा करती है। यदि यह दावा है कि संसार में धर्म वास्तव में उच्चकोटि की बरकत है और यदि इसकी स्थिति ऐसी ही है तो इस पर अधिक ध्यान देना खोज करना और स्वाध्याय करना आवश्यक है।

यह ठीक है कि पृथ्वी और आकाश में ऐसे रहस्य है कि जिनके हल करने में मनुष्य की बुद्धि असफल रहती है और उनकी व्याख्या और निर्णय मनुष्य के पूर्ण विश्वास के अनुसार नहीं किया जा सकता। यहां आकर मानना पड़ता है कि बहुत से गूढ़ रहस्यों का प्रगट करना मनुष्य की बौद्धिक शक्ति से बाहर है। आरम्भ में इनको छोड़कर इस शिक्षा को स्वीकार करने के लिये उसका धैर्य से स्वाध्याय करके जीवन के उच्च उद्देश की प्राप्ती की ओर ध्यान देना चाहिये।

हिन्दुओं को जिस धर्म की शिक्षा उत्पत्ति के प्रारम्भ से दी गई है, उसके तीन रूप-कर्म, उपासना और ज्ञान हैं। कर्म काण्ड में वह सब बातें आ जाती है जो धार्मिक सिद्धान्तों, रस्मव रिवाज,

भिन्न २ प्रकार के धार्मिक बन्धन, शरीर का पालन पोषण और शिक्षा से सम्बन्धित हैं। धर्म की शिक्षा यहीं से आरम्भ होती है और शारीरिक पालन पोषण होते हुये मनुष्य का मन धीरे धीरे स्वयं हृर्दिक और मानसिक क्षेत्र को ओर झुक जाता है। जब तक मनुष्य हार्दिक और मानसिक शाक्तियों के अभ्यास के योग्य न हो जावे तब तक उसे केवल कर्म करने का अधिकार हैं। फिर भी धर्म का उद्देश सदैव दृष्टि के सामने रहता है और मनुष्य को उपदेश किया जाता है कि वह कभी अपनी आदतों का दास न बने क्योंकि किसी कार्य का लगातार अभ्यास करने से मनुष्य उसका दास बन जाता है और वह उसके जोवन से इतना चिपट जाता है कि उसके छोड़ने को जी नहीं चाहता इसलिये कर्म केवल प्रारम्भिक सीढ़ी है जिसको उसी समय छोड़ना चाहिये जब मनष्य को ऊंचे उठने का अवसर स्वयं आजाय।

उपासना काण्ड ध्यान और अभ्यास है जो मनुष्य को परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ने योग्य बनाता है। इससे न केवल नष्ट होने वाली दिमागी शक्ति को वश में करने का अवसर मिलता है किन्तु धीरे धीरे उन्नति करके वह मनुष्य को विज्ञान के राज्य में सफल बनाने के योग्य बना देता है।

ज्ञान का उद्देश आन्तरिक ज्ञान से है और वह अधिकतर बुद्धि को उन्नति और उभार और उस पर अधिकार पाने पर निर्भर है। बुद्धि एक सूक्ष्म तत्व हैं जो मन तत्व से भिन्न है और आत्मा के बहुत निकट है यह अवस्था मन और आत्मा के बीच की है अर्थात् वह मन के ऊपर और आत्मा से नीचे रहती है। और उस तक चढ़ जाने से ही आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश होना सम्भव है। हम इसको सात्विक प्रकाश की अवस्था कह सकते है। आत्मिक प्रकाश की अवस्था अभी इससे कोसों दूर हैं। मार्ग में अभी और बहुत सी श्रेणियाँ हैं जिनके बीच में होकर मार्ग गया है। दुर्भाग्य से इन सब शब्दों

की असली समझ कठिनता से आती है और इष्ट पद प्राप्त करने में असफलता होती है। इन तीन प्रकार की प्राप्ती जीवन के [भिन्न-कर्तव्य पालन करते हुये होती रहती है। शारीरिक हार्दिक, और मानसिक शक्तियों की उन्नति जीवन के दैनिक संघर्ष और आस पास के वातावरण और घटनाओं के साथ मुठ भेड़ करने से भी सम्भव है। यह भूलकर भी न समझना चाहिये कि शारीरिक हार्दिक और मानसिक काम के साथ साथ कभी किसी दशा में आत्मिक कमाई की पूर्ति भी सम्भव है। न ऐसा पहिले कभी हुआ और न अब सम्भव है प्राचीन धर्म में एक विशेष प्रकार की शिक्षा का पता लगता है जिसका ज्ञान आज कल के मनुष्यों के को बहुत कम है और जब तक उसका ज्ञान न हो निज स्वरूप (जात) का ज्ञान और आत्मा को आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश लगभग असम्भव है।

सन्तों के धर्म की यह विशेषता है कि वह मनुष्य की सारी श्रेणियों को दृष्टि में रखकर एक विशेष प्रकार के योग की शिक्षा देता है जिस की सहायता से अभ्यासी को आत्मविश्वास प्राप्त हो जाता है। उसमें कर्म भी हैं उपासना भी हैं और ज्ञान भी हैं। केवल सूक्ष्म अंग को स्वीकार करते हुये एक सरल क्रिया से आत्म प्राप्ती के साधन और अभ्यास को बताता है जिससे शीघ्र आत्मिक उन्नति प्राप्त होती है और जिसका वर्णन अगले सन्देशों में व्याख्या के साथ करेंगे।

दूसरा सन्देश

धर्म का असली मन्तव्य और उच्च उद्देश्य

हम क्यों धर्म के अनुयायी बनें और क्यों उसके बन्धनों की जंजीर अपने गले का तौक बनायें ? यह प्रश्न वहां किये जाते है जहां धर्म की सचाई समझ में नहीं आती और विशेषकर जिस में उसके असली उद्देश को न समझकर लोग अन्धाधुन्दी अनुकरण करते हैं और उसका मन्तव्य केवल दिखावटी आडम्बर, दिखावटी पूजा और रस्म रिवाज तक सीमित रखते है। धर्म दासता का तौक गढ़ने कारखाना नहीं है। इसके प्रतिकूल वह बन्धन काटने का उपाय है। जो धर्म मनुष्य के मन, वाणी और विचार की स्वतन्त्रता छीनता है और उसको अनुचित रूप से फंसाता है वह एक तरह का स्वांग है। जितना शीघ्र मनुष्य उसके बन्धन को तोड़कर उससे भाग जाय उसके लिये उतना ही अच्छा है। इसके कारण प्रत्यक्ष रूप से बुद्धि कुछ करने योग्य नहीं रहती। वह विस्तृत विचारों के उच्च क्षेत्र में पहुँचने के योग्य नहीं रहता। उसका हृदय अपवित्र हो जाता है और इसी कारण से हिन्दुओं में धर्म और दर्शन (फिलोस्फी) सदैव से साथ साथ चले आते हैं। इस आर्यवर्त में जो सदा से हिन्दुओं में धर्म, धार्मिक विचार और हर प्रकार की फिलोस्फी का भंडार और स्रोत कहा जाता है, प्रत्येक मनुष्य को यह अधिकार प्राप्त है कि वह जिस मार्ग को अपनाये उसके साथ साथ स्वतन्त्रता से निर्भय होकर उससे सम्बन्ध रखे। यहां कभी धर्म के लिये रक्त पात नहीं किया गया और न धार्मिक विश्वास के कारण किसी को फांसीदी गई। यहां पर आत्मा और भौतिक पदार्थ के पुजारी अथवा आस्तिक और नास्तिक सदैव से अपनी पृकृति के अनुसार धर्म का पालन करते रहे हैं। प्राचीन

काल में कोई आजकल की भांति न धार्मिक छेड़ छाड़ करता था और न कभी इसके कारण कोई किसी का शत्रु होता था। हाँ परस्पर विचार परिवर्तन की दृष्टि से वार्तालाप हुआ करता था। प्रश्नोत्तर के रूप में सत्यता ज्ञात करने के लिये शंका समाधान भी होते रहते थे। लोग बड़ी शान्ति और गम्भीरता से दिलचस्पी लेते थे। कटुवचन से बचते थे। कोई किसी का हृदय नहीं दुखाता था और न किसी का अपमान करता था। यही कारण है कि इस पवित्र भूमि में हर प्रकार की विचार धाराओं, फिलोस्फी (दर्शन) की शाखाओं को उन्नतिशील होने का अवसर प्राप्त हुआ। तुमको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इस विचित्र देश के प्राचीन इतिहास में बहुधा नास्तिक और अनीश्वर वादियों तक को श्री के नाम से सम्बोधित किया गया है। हिन्दुओं के प्रसिद्ध षट दर्शनों में सांख्य शास्त्र के लेखक कपिल को न केवल ऋषि की पदवी प्राप्त हुई किन्तु वह विष्णु का अवतार माना गया है। इस महा पुरुष ने जो संसार में दर्शन (फिलोस्फी) का निर्माता कहा जाता है और उसने ऐतहासिक दृष्टि कोण से सबसे पहले न केवल रचना के कारणों की जांच पड़ताल की है किन्तु गूढ आध्यात्मिक विषयों और रहस्यों का उत्तर मानव बुद्धि के अनुसार दिया है। उसके नाम का सदैव से आदर किया जाता है और धार्मिक दार्शनिक ज्ञान के जिज्ञासु को सर्व प्रथम इसी की विचार धारा के अध्ययन का आदेश दिया जाता है। वेदान्त जो दार्शनिक विचार की सीढ़ी माना जाता है अपने गौरवशाली भवन को अलग बनाता है और निर्भयता, असाधारण साहस के साथ संसार की कुल विचार धाराओं को केवल कल्पित बताता है। पहिला द्वैत वाद है दूसरे को अद्वैतवाद कहते हैं तुम को एक भी ऐसा वेदान्ती नाम लेगा जिसने पहिले कपिल के सांख्य का अध्ययन न किया हो। इस एक उदाहरण से समझ में आ सकता है कि धर्म के हेतु यहां कभी लड़ने झगड़ने की आवश्यकता नहीं हुई। आर्यवर्त में मनुष्य इस बात को आरम्भ से ही समझते आये

हैं कि मनुष्य को भिन्न भिन्न प्रकार की प्रकृतियां होते हुये यह सम्भव नहीं है कि केवल एक प्रकार का धार्मिक विचार सबको अपनी ओर आकर्षित करले। सब को इस बात का अवसर मिलना चाहिये कि जो मार्ग जिसको पसन्द हो उसे ग्रहण करे और अपनी आध्यात्मिक उन्नति का उपाय ढूंढे। इनमें अन्तर अवश्य है और अन्तर होना भी चाहिये। मानव बुद्धि की गढ़त की श्रोणियों की दृष्टि से धार्मिक भिन्नता रहना संभव है। जिस प्रकार भिन्न भिन्न पाठशालायें विशेष विशेष प्रकार की शिक्षा देती हैं इसी प्रकार धार्मिक मार्ग भिन्न भिन्न क्षेत्रों के लिये अपने उद्देश की पूर्ति कराते है। लड़के का धर्म युवा का धर्म कभी नहीं हो सकता मगर उसकी भी अपनी हैसियत और श्रेणी के लिहाज से महत्व है। धार्मिक लाभ के सभी अधिकारी है। सब अपना अपना कार्य करते है और बुद्धि की उन्नति के साथ उच्च आदर्श का ओर संकेत करते रहते है। सन्तों ने कहा है कि धर्म मार्ग का नाम है जो मनुष्य के अपने घट के भीतर से होता हुआ गया है। धर्म केवल एक उद्देश्य की प्राप्ति का साधन या मार्ग है स्वयं उद्देश नहीं है। उद्देश और साधन में अन्तर होता है। यह ठीक है कि साधन के बिना उद्देश तक पहुँचना कठिन है। वह आवश्यक है। सड़क खुली है। इस पर चलने से इष्ट स्थान तक पहुंचना होगा। यदि कोइ मार्ग को उद्देश समझ कर उसमें अटक रहे तो यह उसकी भूल होगी।

धर्म के प्रारम्भिक बन्धन दास बनाने के लिये नहीं है। किन्तु शिक्षा क्रम का है जिसकी सहायता से मनका दमन करके मार्ग पर चलने की शक्ति आती है। धर्म का उद्देश यह है कि मनुष्य—

(१) प्रसन्न रहे और स्थायी आनन्द की अवस्था प्राप्त करे

(२) दूसरे अमर जीवन का अधिकारी हो
(३) ज्ञान की प्राप्ति करे।

मनुष्य स्वाभाविक रूप से चाहता रहता है कि उसको
(१) दुख के भय से छुटकारा मिले
(२) कभी मरे नहीं
(३) वह अज्ञानी न रहे ।

मानव की समस्त उन्नतियों का उद्देश केवल इन्हीं तीन बातों तक सीमित है । इनके अतिरिक्त और कोई चौथी बात नहीं है।

यदि धर्म को इन तीन आवश्यक बातों के संभालने का मार्ग मान लिया जाय, जो वह निश्चय से है तो धर्म का महत्व स्वयं समझ में आजाता है। धर्म का असली मन्तव्य यही है कि मनुष्य प्रसन्न रहे , अमर जीवन प्राप्त करे और ज्ञान के प्राप्त करने में उससे सहायता ले ।

धर्म के यही तीन उद्देश हैं जिनकी व्याख्या आगे चल कर करेंगे ।

तीसरा सन्देश

सुख

जिस मनुष्य ने जीवन में हार्दिक और बौद्धिक भान की शक्ति प्राप्त कर ली है वह स्वाभाविक रूप से सुख की खोज करने लगता है। प्रत्येक समझदार जीव सुख चाहता है और रात दिन उसी के विचार और पलपल पर उसीकी चिन्ता में रहता है। जाग्रत में तो पाने और प्राप्त करने की वस्तु प्रतीत ही होती है मगर स्वप्न में भी उसका सपना देखता है और उसीकी इच्छा रहती है। पढ़ना लिखना, नौकरी चाकरी, सैर तमाशा, यत्न प्रयत्न, खुशामद और चापलोसी अभिप्राय, यह है कि हर एक बात केवल सुख की प्राप्ती के लिये की जाती है अतः संसार के सारे व्यवहार सुख के लिये होते हैं

केवल हमारा साधारण व्यवहार सुख की प्राप्ति को होता है किन्तु शरीर के सारे अंग प्रत्यंग इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुये कार्य करते हैं। जो वस्तु हममें मिलकर सुख का कारण होती है उसको हम स्वीकार कर लेते हैं और उसके विरुद्ध होती है और सुख प्राप्ति में बाधक होती है उसको त्याग देते हैं। जैसे किसी समय यदि कोई दूषित पदार्थ हमारे शरीर के अन्दर प्रवेश करता है तो शरीर के अंग यह प्रयत्न करते हैं कि वह शरीर से घुल मिलकर उसका अंश बन जाय और एकाँग के नियम आधीन इसी काम में लगें, जिसकी पूर्ति की ओर सारा शरीर रात दिन लगा रहता है। यदि वह शरीर में घुल न सके तो उसको निकालने का उपाय सोचा जाता है और हृदय की सब शक्तियाँ इसी ओर लग जाती हैं और उसे बाहर निकाल कर चैन लेती हैं। अनुराग और घृणा के दृश्य जो हमको दिखाई देते है वह बताते है कि किसको हम सुख का साधन बनायें और किससे अलग रहें। कल्पित जगत में भी इस प्रकार अच्छे और बुरे विचारों की दशा

रहती है। हमारे दिन प्रतिदिन की भूलों और अनुभवों से धीरे २ यह जान लेने के योग्य होते जाते हैं कि सुख की प्राप्ति के लिये कौन से उपायों को ग्रहण किया जावे।

विभिन्नता की पर्दे में भिन्न भिन्न रूप और भिन्न भिन्न अवस्थायें दृष्टि गोचर होती हैं कारण कि मिश्रित रचना में इस प्रकार के दृश्य सदैव दृष्टि के सामने रहेंगे। इसलिये हम में से प्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक मनुष्य के सुख की विचार धारा के रूप भिन्न २ हुआ करते हैं जिसने जिस रूप में उस समय तक के लिये सुख समझ लिया है, उसकी खोज या दौड़ धूप में इसी तरह का परिश्रम करता है। सुख वास्तव में क्या है, इसको थोड़े ही मनुष्य समझते हैं मगर सुख के उद्देश का अनुभव उनके हृदय में रहता है। इसकी व्याख्या उस समय तक नहीं की सकती जब तक बौद्धिक विकाश विशेष प्रकार का न हो जावे। बोध शक्ति सब में हैं। जिस समय जिस की जैसी समझ है, उसी के अनुसार वह वैसा ही कल्पित रूप स्थित करके वह उसके पीछे दौड़ जाता है और कुछ समय तक दौड़ता रहता है यहाँ तक कि बुराई भलाई भी इसी उद्देश के हेतु की जाती है। हम तो हंसी मजाक की आदत भी इसी सुख की प्राप्त के लिये समझते हैं। यह दूसरी बात है है कि यह सुख की प्राप्ति के निश्चित उपाय सिद्ध होते हैं अथवा नहीं परन्तु मन्तव्य वही है। अभिप्राय यह है कि यहां हर एक सुख की कसौटी, उसका रूप और उसकी हैसियत कुछ दिनों के लिये भिन्न हुआ करती है। एक मनुष्य ने धन को सुख समझ रक्खा है और वह उसीकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है। दूसरे ने खाने पीने में सुख समझकर उसकी तरंग में बहा चला जाता है तीसरा विषय वासना और भोग विलास को सुख मानता हैं और उसी की प्राप्ती में हाथ पाँव मारता रहता हैं। सारे हौसले, हृदय के समस्त भाव और उमंग एक ओर होकर उसी की ओर लग जाते हैं और वह समझता है कि जो कुछ सुख का रूप उसने

समझ लिया है वही ठीक है। सारे यत्न प्रयत्न और संघर्ष करते हुये अनुभव बढ़ने के साथ साथ ऐसा समय आ जाता है कि मनुष्य-अपनी भूल स्वीकार करने को विवश हो जाता है। हवाई किले टूट जाते हैं और उसकी दशा दया का पात्र हो जाती हैं और वह ऐसा दुखी हो जाता है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हुकूमत, अधिकार धन मान, विद्या, बुद्धि सुख सिद्ध नहीं होते। वह पछतावा करके और घबड़ाकर यह जानना चाहता है कि मैं अब तक क्या करता रहा। फिर उसका ध्यान दूसरी ओर स्वयं खिच जाता है। कोईतो इसी जीवन में शीघ्र संभल जाता हैं और कोई देर में संभलता है। कोई और जन्म में सुख के वास्तिवक उद्देश का अनुभव करता है

जो कुछ किया जाता है वह वास्तव में केवल साधन मात्र है ध्येय नहीं है, ध्येय और साधन में अन्तर रहता है। धन मान, अधिकार सम्भव है सुख के साधन हों मगर वास्तव में सुख नहीं हैं। इन उपायों के रूप भी भिन्न होते हैं। जिस समय मनुष्य किसी चीज को एकत्रित करने लगता है उसकी तृष्णा बढ़ जाती है और वह दुख का कारण हो जाती हैं। धन मिल गया। मिलना अवश्य था क्योंकि मन जिधर लगेगा उसको अवश्य प्राप्त कर लेगा। किसी का परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता। कर्म का फ़ल अवश्य होता है। मगर उसकी अधिकता से तृष्णा और रंज बढ़ जाता है और सब मिल मिला कर उसके फांसने की जंजीर सिद्ध होते हैं। हविस बढ़ गई। धन इकट्ठा हो गया। अब उसकी रक्षा के विचार से एक मजबूत भवन बनाया गया, लोहे के सन्दूक एकत्रित किये गये। चौकीदार रक्खे गये। चित्त में सदैव यह भय रहता है कि कहीं चोर न ले जावे अथवा कोई बन्धु धोका देकर इसे न लेले। यदि इनका भय नहीं तो सरकार दरबार का भय सवार होता है। ऐसा न हो कि कोई हाकिम घूस लेकर किसी मुकद्में में फंसा ले।

उसका खुशामद, झूंठ सच और चापलोसी सीखनी पड़ी । फिर ऐसी दशा में कैसे संभव है कि मनुष्य धन का सुख भोग सके । विचित्र खेंचातान की दशा हैं । न उसको रख सकता हैं न छोड़ सकता है ।

बहुधा धनाड्य कहते हुये सुने गए है कि निर्धन अच्छे हैं परन्तु वह क्या यह निर्धनों से अपनी दशा बदलने को तत्पर हैं ? यह मन समझौती बातें हैं। उनकी दशा सांप और छंछूदर की सी हैं। न वह इसको निगल सकता है और न इसको छोड़ ही सकता हैं । तुमने कभी यह कहानी सुनी या नहीं। यदि नहीं तो हम सुनाते हैं। कौन जाने ठीक हैं या गलत मगर शिक्षाप्रद अवश्य है । सांप ने एक छछूंदर पर आक्रमण करके उसको पकड़ लिया और मुँह में दबा लिया । जब उसमें दुर्गन्ध आने लगी तब वह समझा कि यदि वह उसको निगल लेता है तो कोढ़ी हो जावेगा और यदि छोड़ता है तो अन्धा हो जावेगा । बेचारा क्या करे क्या न करे ! यहा दशा अधिकतर धनी लोगों की होती है। अमरीका सब से अधिक धनी देश है । यहां हजारों करोड़ पती मिलेंगे जो मानसिक दुखों में फंसे हैं । कारण कि उन्होंने भूल से धन को सुख का साधन समझा था । वह गलत सिद्ध हुआ । मूर्खों को उद्देश और इसके प्राप्त के साधन की समझ नहीं आई । बहुत से आत्महत्या कर बैठते हैं । यह उनके परिश्रम का परिणाम होता है इससे यह सिद्ध हो जाता है कि धन सुख का वास्तविक साधन नहीं है । कभी कभी व्यापार में घाटा आ जाता है दिवाला निकल जाता है और उस समय धनाड्य व्यापारी की दशा कुछ न पूछो ! इनको बहुत दिनों बाद यह समझ आती है कि सुख क्या था, कहां था और किसमें था और किस दशा में उसके साथ सम्बन्ध पैदा करना पड़ा मगर सुख अवश्य है। इससे कौन इन्कार कर सकता हैं। यह आत्म हत्या क्यों की जाती हैं ? उच्च दशा की प्राप्त करने के हेतु जो सुख का दूसरा रूप है ।

दूसरे लोग इन्द्रियों के भोग विलास में सुख समझते हैं। विषय वासना से उपर उनकी दृष्टि नहीं जातीऔर केवल इन्द्रियों के भोगों में सब कुछ समझकर खाना पीना, भोग विलास करना, रंग रलियों मनाना ही सुख समझते है। पेट अफरा हुआ बीमारी का घर होता है। इन्द्रियों के जाल में फंसा हुआ मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं रह सकता। वह लाख कहे कि —

अब तो आराम से गुजरती है, आकबत की खबर खुदा जाने,

आकवत(अन्त) तो अभी बहुत दूर है। वह जीवन में थोड़े ही दिनों बाद समझ जाता है कि उसका विचार झठा था। हम सभ्यता और सदाचार के विचार से इन्द्रियों के भोग विलास के परिणाम स्पष्ट रूप से कहना नहीं चाहते। हाँ एक हिन्दू कवि की कविता का अनुवाद देना उचित प्रतीत होता है। वह कहता हैं—

धोखा न खाओ, जाल में न फंसो, इन्द्रियों के विलास से जहाँ तक बन सके दूर रहो नहीं तो वह ऐसी मार मारेंगे कि चिल्लाते रहोगे। इन्द्रियां पांच हैं-आंख, नाक, कान त्वचा और जिभ्या। उनके भोग भी पांच प्रकार के हैं-रूप, गन्ध, शब्द, स्पर्श और रस। यदि एक ही इन्द्रिय से आवश्यकता से अधिक सम्बन्ध है तो दुखी होगे ओर सबके जाल में फंस गये तो फिर परमात्मा हो तुम्हारी दशा पर दया करे। पतंगा दीपक को देखकर उसके रूप का पुजारी बना। उस में जलकर भस्म हो गया। भौंरा ने कमल की सुगन्ध से दिल लगाया। सूर्य छिपते ही उसकी पंखडियों में फंस गया। हिरन बीन के शब्द को सुनकर मोहित हो कर तड़फता हुआ बजाने वाले के निकट आया। बजाने वाले ने उसके गले पर छुरी फेर दी और वह मर गया। मछली चारे की खोज में कांटे में फंसकर मारी गई। इसी प्रकार हाथी ने हथिनी के नर्म शरीर को छुआ। दुख के गड्ढे में गिरा। जंजीरों से बाँध

दिया गया। जँगल की स्वत्रता से बंचित हो गया। यह कवियों की वर्णन शैली है मगर सचाई है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सब ही दुख और कष्ट पैदा करने वाले हैं । एक एक विषय का यह हाल है। इस अपेक्षा से क्या कहा जाय! जो पाँचों में फंसा है उसको न यहां सुख न वहां सुख। जो लोग इन्द्रिय भोगो में फंसे रहते हैं वह अपने आपे में नहीं रहते । उनकी स्वतन्त्रता किसी और के हाथ में है और जब स्वतंत्रता छिन गई तो फिर सुख कहां! जीवन के भोगों या खुशियों की यह दशा है। हम समझते हैं कि समझदार के लिये इतना ही पर्याप्त है ।

मनुष्य शारीरिक भोग विलास में ही सुख समझते है। वह धोखे में पड़े हुये है। शारीरिक जीवन इनके आकर्षण का कारण है। वह दावे से कहा करते हैं जो कुछ है यही है। जो कुछ सुख हैं इस में हैं मगर अनुभव बताता है कि एक समय आता है जब उनके अंग प्रत्यंग ढीले हो जाते हैं इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती है और इन्द्रियों का सुख भाग जाता है। फिर समझदार मनुष्य इनके पीछे क्यों मरे! क्यों न किसी ऐसे सुखकी खोज करे जो चिरस्थायी हो और सुगमता से प्राप्त हो सके।

वास्तव में यह इन्द्रियों का सुख नहीं है जिसकी मनुष्य खोज करता है किन्तु उसको केवल सुख की आवश्यकता है। वह सुख का अभिलाषी है। उसके लिये भिन्न भिन्न उपाय सोचता रहता है। यह सम्भव है कि वर्तमान दशा में स्पष्टता के साथ इस सुख की समझ न आये मगर कौन कह सकता है कि सुख की इच्छा नहीं है। सब ही सुख के इच्छुक हैं सुखी रहना चाहते हैं और इसी की प्राप्ति के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के साधन करते हैं। सन्त कहते हैं:—

"ऐ भूले हुए मनुष्य यह सुख तेरे बाहर नहीं है किन्तु

भीतर छुपा हुआ है। यदि तू एक बार इसके रूप को समझकर तत्परता के साथ इसकी खोज करे तो वह तुझ को अपने अन्दर प्राप्त होगा और तू सदैव के लिये सुखी बन जायगा।"

चौथा सन्देश

ज्ञान विज्ञान

हम संसार में आते समय खोज का भाव हृदय में ले आते हैं। और जन्म लेते ही उसके लक्षण दिखाने लगते हैं। एक लड़का प्रकाश को देखकर उसकी ओर ध्यान पूर्वक आकर्षित होता है और उसके साथ खेलने लगता है। माता का रूप इस छोटे हृदय के लिये एक खुली पुस्तक सिद्ध होती है। उसके रूप रंग को देखता हुआ वह उससे सम्पर्क स्थापित करने का इच्छुक रहताहै। जब कोई नया व्यक्ति उससे प्रेम करता है वह उसके नाक कान आँख आदि को टटोलना उसी तरह आरम्भ करता है जैसे बड़े लड़के अक्षरों को पट्टी पर गिनते हैं। घड़ी टिक टिक करती है और बच्चा अपने कानों को झुकाकर उसे सुनता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि हम स्वभाव से सत्य के प्रेमी हैं और जो वस्तु सामने आती है उसकी वास्तविकता जानने के इच्छुक रहते हैं। बचपन से ही बच्चा यह प्रश्न करता है—"यह क्या है ?, क्यों है ? कहां से आया हैं ? और इसका क्या होगा ?" यह शब्द जीवन भर हमारी जुबान पर रहते हैं। बच्चों की तोतली आवाज कभी कभी इसको प्रगट करती है। बाद विवाद करने वाले वृद्ध मनुष्य भी अन्त समय तक इन बातों से सम्बन्ध रखते हैं।

मनुष्य का मन भिन्न भिन्न विषय को सोचने और उसकी वाणी विभिन्न विषयों पर बाद विवाद करने से नहीं घबराती। वह रात दिन प्रश्नोत्तर और खोज पड़ताल में पड़ा रहता हैं और उसका सारा जीवन इसी उधेड़ बुन में समाप्त हो जाता है। यदि आवागमन की सचाई पर विश्वास करें तो यह दशा अगले जीवन तक भी चालू रहती है। जहां तक इसको प्राप्त करने का सम्बन्ध हैं, मूर्ख और विद्वान दोनों की दशा एक समान है। और दोनो को अपने मानसिक और बौद्धिक विकास के अनुसार जानने और ज्ञान प्राप्त करने की धुन रहती है। सम्भव है उनके प्रश्न करने के ढंग भिन्न हों। सम्भव है कि प्राप्त करने के ढंग भिन्न हों मगर ज्ञान की प्यास और विज्ञान की इच्छा सबमें उपस्थित है। इससे कोई इंकार नहीं कर सकता। यह सारे ज्ञान और कला कौशल की शाखायें, दर्शन और विज्ञान के खेल इसके प्रमाण है। वह केवल मनुष्य के स्वाभाविक ध्यान के परिणाम है। खोजी और विज्ञानी वर्ग ज्ञान क्षेत्र की भिन्न भिन्न शाखाओं को असलियत का पता लगाते हुये प्रकृति के उस नियम पर अधिकार पाने के इच्छुक रहते हैं जो संसार की रचना में सौन्दर्य का खेल दिखा रहा है। वह अपने ज्ञान और अभ्यास (अमल) से उन पर विजयी होकर उनसे सांसारिक लाभ की सूरत उत्पन्न करना चाहता है। यह नहीं कहा जाता और कोई भी (इस समय) नहीं कह सकता कि इस वर्ग की खोज कहां तक पहुँच कर समाप्त होगी और किस तरह और किस रूप में इसकी समाप्ति होगी।

खेत बोये जा रहे हैं। फ़सल काटी जा रही है। यह इसके परिश्रमका पुरस्कार है। वह मनुष्य के लाभ के लिये अपने पीछे विशेष प्रकार की बपौती (मीरास) छोड़ जाता है और समस्त लोगों का उपकारी कहलाये जाने का अधिकारी है। यही दशा

फिलोस्फरों और दूसरे निपुण लोगों की है। एक वाह्य जगत के बखिये उधेड़ रहा है। दूसरा अन्तरीय जगत का हाल जानना चाहता है।

परन्तु प्रश्न यह है कि क्या यह इच्छा कभी पूरी भी होगी? इसका उत्तर 'नहीं' है। मनुष्य जितना आगे की ओर पग बढ़ाता जाता है उतना ही अपने आपको अनभिज्ञ समझने लगता है। जितना ही वह पढ़ता है वह अनपढ़ बनता है। सन्तुष्टि और शान्ती प्राप्त नहीं होती। यह एक लगातार पेचदार जंजीर है कि जिसकी कड़ियां पग पग पर बढ़ती जाती हैं। मनुष्य तेली के बैल की भांति दिन भर चले मगर जहाँ थे वहीं रहे। वाह्य जगत का हिसाब लगाना सुगम नहीं है। अनन्त लोक हैं। अनेकानेक विद्या और कला की शाखायें हैं। एक एक महकमे में लाखों और करोड़ों दफ्तर हैं। यह तो केवल स्थूल जगत का हाल है। इसके आगे सूक्ष्म और उसके आगे कारण जगत आवेगा और फिर जीवन की अन्तिम श्रेणी या अवस्था अभी बहुत दूर है जिसका पता पाना शारीरिक मन बुद्धि के क्षेत्र से बहुत बाहर है। मनुष्य जितना ऊपर को चढ़ता जाता है उतना ही अधिक सीढ़ियों का क्रम दिखाई देता है और अन्त में स्वीकार करना पड़ता है कि इस स्थान पर बुद्धि काम नहीं करती और पता नहीं लगता कि यह क्या मामला है।

हम जो ज्ञान यहाँ प्राप्त करते है वह तीन प्रकार का है। पहला प्रमाण, जो ज्ञानेन्द्रियां का ज्ञान है जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, रूप से प्राप्त होता है। दूसरा अनुमान है, जो घटनाओं को देखकर एक विशेष परिणाम पर पहुँच कर अनुमान के रूप में स्थित हो जाता है। तीसरा शब्द है जो पूर्ण मनुष्य और निस्वार्थ व्यक्तियों की गवाही और गुरुओं का बचन है। सम्पूर्ण जानकारी इन्हीं तीन प्रकार के ज्ञानों पर निर्भर होती है। जितने दृश्य

हमारे ज्ञान को विकसित करने में सहायक होते हैं सबका आधार इन्हीं पर है। साधारणतया मनुष्य अनुमान और प्रमाण को तो स्वीकार कर लेता है परन्तु संसार में ऐसे मनुष्य भी हैं जो गुरुजनों की गवाही आवश्यक न समझ कर उसको व्यर्थ समझते हैं यद्यपि प्राचीन काल से लोग कहते आरहे हैं कि यह भी ज्ञान प्राप्ति का साधन है। बहुत सी बातें ऐसी है जिनकी समझ दूसरों की गवाही के बिना नहीं होती जैसे हमारे जन्म की तिथि, बचपन की घटनायें आदि। इनके लिये जब तक हम दूसरों की गवाही पर विश्वास न करें हमारे सोचने का कोई परिणाम नहीं होता। प्रमाण और अनुमान तो हम स्वयं करते है परन्तु शब्द उनकी कमी को पूरा करता है, जो दूसरों की सहायता के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। सहस्त्रों वर्षों का लिखा हुआ इतिहास, मनुष्य के अनुभवों के परिमाण और सैकडों वर्षों की लिखी हुई घटनायें इन सबको हम शब्द की सूची में सम्मिलित कर सकते हैं परन्तु इन सबसे अधिक मूल्यवान आप्त अर्थात निस्वार्थ ज्ञानवान का शब्द है।

सारे मनुष्य इन्हीं के द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं ज्ञान रुचि इनके चित्त पर इतनी अधिक होती है कि इस ज्ञान को सर्वोच्च समझते हैं और अज्ञान को लज्जा की बात जानते है। हमने ऐसे बहुत लोग देखे कि जो वास्तव में बातों को समझते नहीं मगर प्रश्न करो तो उत्तर देंगे--'हां'। हम केवल इस ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि वह अज्ञानी नहीं कहलाना चाहते। यह बात सह्य नहीं है कि दूसरे लोग उनको मूर्ख समझ। जानने वाले सुगमता से उनके मन में घुसकर इसका पता लगा सकते है। सबको बुद्धिमान और ज्ञानी बनने का ख्याल है और उन तीन की सहायता से ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं।

मगर क्या इन बाहरी उपायों से पृकृति के प्रबन्ध के तमाम लोकों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है ? यह असम्भव है। रहस्य जैसा अब

तक है आगे भी हल न होगा। मनुष्य हजार प्रयत्न करे मगर यह रहस्य न अब तक खुला और न आगे खुलेगा। समस्त इन्द्रियाँ और उनकी शक्ति व्यर्थ सिद्ध होंगी जैसा कि सुख के शीर्षक में उनकी दशा का वर्णन किया गया है।

यह प्रश्न कि संसार की उत्पत्ति कैसे हुई, हम कैसे और क्यों यहाँ आये और हमारे आने का उद्देश क्या है, बराबर उठते रहेंगे और उनका उत्तर मिलना कठिन होगा। जितना विज्ञान (साइन्स) और फिलोस्फी है इस गुत्थी के सुलझाने में असफल रहेगा।

संत कहते हैं जिस प्रकार सच्चे सुख की प्राप्ति में धर्म सच्चा सहायक सिद्ध होता है वैसे ही वह सत्य ज्ञान की प्राप्ति में सहायक हो सकता हैं। जैसे सुख अपने भीतर है वैसे ही ज्ञान भी अपने अन्दर है और बाहर का ज्ञान भी हमारे अन्दर ही का ज्ञान है। कोई न हमको सिखा पढ़ा सकता है न ज्ञानी बना सकता है। अपने भीतर देखने और निज ज्ञान प्राप्त करने से हम ज्ञानी हो सकते हैं इन्हीं इन्द्रियों को अन्तर की ओर विशेष आध्यात्मिक क्रिया के अनुसार उलटो और अपने स्वरूप का ज्ञान होते ही सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जावेगा।

सहस्त्रों वर्ष हुये ऋषि याज्ञवल्क ने जो वार्तालाप अपनी स्त्री मैत्री से की वह सत्य को जताने में अद्वितीय हैं। ऋषि कहता है—

(७) जैसे नक्कारे पर चोट लगाई जातीं है पर उसके बाहर की आवाज अलग अलग नहीं पकड़ी जा सकती परन्तु नक्कारे के पकड़ने से आवाज पकड़ी जा सकती है।

(८) जैसे कि शंख जब पूरा बजाया जाता है तब उससे बाहर के शब्द को नहीं पकड़ा जा सकता परन्तु शंख अथवा उसके बजाने वाले को पकड़ने से शब्द पकड़ा जा सकता है।

(९) जैसे बीन बजाये जाने पर उसके शब्दों को अलग अलग

नहीं पकड़ा जा सकता परन्तु वीन के पकड़ने से बीन का शब्द पकड़ा जा सकता है।

(१०) जैसे गीली लकड़ी जलाई जाने पर बाहर की ओर धुआँ और चिनगारियाँ अलग अलग निकलती हैं मैत्री ! ठीक इसी प्रकार से बाहर की ओर साँस लिया गया और ऋग, यजुर, साम, अथर्व इतिहास, पुराण, उपनिषद, श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान और व्याख्यान सब इसी के अंग हैं।

(११) जिस प्रकार समुद्र पानी का केन्द्र है, इसी प्रकार स्पर्श का एक केन्द्र चर्म है, सूंघने का नाक है और सारे स्वादों का केन्द्र जिभ्या है। इसी तरह तमाम रूपों का केन्द्र आँख है, आवाजों का केन्द्र कान है और सारे विचारों का केन्द्र मन है। इसी प्रकार तमाम ज्ञान विज्ञानों का केन्द्र हृदय है। इसी तरह और तमाम वेदों का केन्द्र वाणी है तमाम कर्मों का केन्द्र हाथ है। इसी तरह तमाम आनन्दों का केन्द्र लिंगेन्द्रिय है और तमाम त्यागों का केन्द्र गुदा है। इसी तरह कुल वेदों का केन्द्र वाणी है।

(विरहदारण्यक उपनिषद)

हर वस्तु का आरम्भ आत्मा से है। आत्मा को जान लो सब कुछ जाना जा सकेगा और कोई भेद बिना जाने नहीं रह सकेगा और जिस ज्ञान की प्यास से सब बेचैन हैं वह प्यास बुझ जावेगी।

यह दूसरी बात है जो धर्म सिखाता है और जिसको प्राप्ति के लिये वह संकेत करता है।

पांचवाँ सन्देश

जीवन

होना जीना जीवन है और जहाँ जीवन के भान की शक्ति होगी वहाँ उसका प्रभाव भी बिना प्रभाव किये न रहेगा। जीवन आस पास की सामिग्री से हर प्रकार का भोजन, चाहे वह शारीरिक हो अथवा मानसिक, प्राप्त करता है। सम्भव है कि वह किसी हद तक आस पास की स्थितियों और घटनाओं के प्रभाव में आजावे परन्तु सच्चे जीवन की पहिचान यह है कि वह औरों पर अपना प्रभाव डालता रहता है। जो लोग दूसरों के हृदय में यह विचार डालते रहते हैं कि मनुष्य केवल परिस्थितियों का दास है, वह उसकी मनुष्यता छीनने और उसको पशु बनाने का यत्न करते हैं। मनुष्य परिस्थितियों का दास नहीं है किन्तु वह उसकी दास हैं। परिस्थितियाँ उसको उत्पन्न नहीं करतीं किन्तु वह उनको उत्पन्न करता रहता है और उनको अपनी प्रकृति के अनुसार बना लेता है। वह दुनियां में प्रकृति के मंडलों को जीतने को आया है। जब तक उसमें उन पर विजय पाने की शक्ति है तभी तक वह मनुष्य है। मनुष्य दुनिया में एक बड़ी शक्ति है और सब उसकी इच्छाशक्ति के आधीन हैं। यदि वह सच्चा मनुष्य है और उसमें मनुष्यता की गंध और मनुष्यता के गुण हैं तो प्रकृति में न उसका सामना करने की शक्ति है न कोई उससे छेड़ छाड़ करने का साहस करता है।

हम में जीवन है परन्तु यह जीवन माद्दा (पदार्थ) के खोल के अन्दर छुपा हुआ है और माद्दा से दबने के कारण वह अपनी शक्ति को भली प्रकार प्रगट नहीं कर सकता। जिस प्रकार अग्नि की चिनगारी के ऊपर राख का ढेर हो और उसकी गर्मी का पता न लगे, इसी प्रकार हमारे जीवन की दशा है परन्तु बढ़ना उभरना और

विजय प्राप्त करना जीवन का स्वभाव है या गुण है। वह क्षण क्षण शारीरिक कोषों के ऊपर आने का इच्छुक रहता है और इसी कारण वह लगातार संघर्ष की दशा में रहता है। एक रेंगता हुआ कीड़ा कभी बाईं ओर जाता है कभी दाहिनी ओर और ऐसी वस्तुओं को स्वीकार करता है जो उसकी उन्नति में सहायक और अनुकूल हों। जिनको वह अपने अनुकूल नहीं पाता उनसे मुंह फेर लेता है। भोजन, संगत और सामान सबका सम्बन्ध इसी दृष्टि से किया जाता है। एक कीड़े को छोड़ दो तो तुमको उसकी चाल ढाल से विश्वास हो जायगा कि मनुष्य की भांति उसमें भी यह गुण है। इसका जीवन तुमको तुच्छ दिखाई देगा मगर अपनी सामर्थ्य के अनुसार वह भी इसी नियम के आधीन अपना काम कर रहा है। वह भी बढ़ना उन्नति करना चाहता है। उन्नति का तत्व चाहे गुप्त दशा में हो मगर उसको ऊपर आने तथा बढ़ने के अवसरों की खोज है। वह भी किसी न किसी ढंग में दिनों दिन बढ़ रहा है। इसमें तनिक संदेह नहीं कि प्राकृतिक प्रबन्ध में प्रत्येक वस्तु बढ़ने का गुण रखती है। बीज अंखुये के रूप में आने का इच्छुक है। पेड़ का अंखुआ उभरने का इच्छुक है। सारे जीवधारियों को इसी का सौदा है। मनुष्य का बच्चा भी जाने या अनजाने इसी दशा का इच्छुक है। जिधर दृष्टि डालो यही दृश्य दिखाई देगा। सब बढ़ रहे हैं। सब उन्नति की खोज में है। सबमें इसी की इच्छा है। सब कमी और सीमित होने से बचना और उन्नति और फैलाव चाहते है। हर एक को अवनति से घृणा और उन्नति से अनुराग है। जब हर जीव की यह दशा है फिर कैसे मान लिया जाय कि मनुष्य में यह गुण न होगा,

शादी विवाह और दूसरे संस्कारों के नियमों की आड़ में उन्नति का विचार प्रगट व गुप्त है। जो लोग संस्कारों के महत्व व फिलोस्फी के ज्ञाता हैं वह जानते हैं। उनके द्वारा औरों की सहानुभूति और उनके विचार उस व्यक्ति को मिलते है जिसका संस्कार किया

जाता है। इन कार्यों में भी त्याग और ग्रहण का नियम दृष्टि रक्खा गया है। भक्त और पापी दोनों इस नियम के आधीन है परन्तु उनके कार्य करने के तरीके अलग अलग हैं। धर्म के अनुयाइयों ने एक श्रेष्ठ मार्ग अपनाया है और मूर्ख और दुराचारियों ने बुराई की राह ली है। चोर चोरी करता है। दन्ड पाता है। समय पर उसका सुधार होता है और तब वह सीधे मार्ग पर आता है और कुछ दिनों भटकने के पश्चात किसी सन्त या महात्मा का सत्संग मिलता है। तब अपने अनुभव और सत्संग के प्रभाव से वह भी सद्मार्ग पर आजाता है।

ईश्वर की पूजा, धार्मिक नियमों का पालन, योग का अभ्यास यह सब पूर्ण जीवन प्राप्त करने के साधन हैं। मृत्यु वास्तव में डराने वाला हुआ नहीं है किन्तु परिवर्तन की एक दशा है जिसमें इतना दुख नहीं होता। हाथ पांव के टूटने पर न जाओ। प्रत्यक्ष देखने वाले इसको जो चाहे समझें मगर सचाई यह है कि जो हम तुम को सुनाते हैं। धर्मावलम्बियों ने निःसन्देह जन्म मरण के दुख को भयानक ढंग से वर्णन किया है जिसका उद्देश केवल डराने और वैराग्य उत्पन्न करने का है। इससे अधिक कुछ नहीं। हमने तो जीवन में मरकर इस दशा का अनुभव कर लिया है। इसीलिये वह कहते हैं जो सच्ची समझते हैं। दुख न आदि में है न अन्त में। वह जीवन की केवल एक बीच की अवस्था है कारण कि इसमें विचारों का उलझाव रहता है। प्राण निकलने से पूर्व यदि विचार अच्छे है तो सुख होता है और यदि बुरे हैं तो आंखों के स्थान तक पहुँचने के पहिले वह अवश्य उसको सताते हैं। जब आखों की पुतलियां खिच जाती हैं फिर कुछ नहीं। सतों के यहां जो सुरत शब्द योग की शिक्षा दी जाती है इसके अभ्यास के समय या सुरत (आध्यात्मिक धार) के खिचाव के समय मृत्यु की दशा का सामान पैदा हो जाता है। जिसने साधन करके इसको देखा है वह तो इसको मानेगा और जिन्होंने केवल दूसरों की

जान निकलने के दृश्य को देखा है वह ठीक अनुमान नहीं कर सकते मगर यह एक ऐसी बात है जो विशेष विशेष लोगों के अनुभव से सम्बन्ध रखती है।

उन्नति जीवन का चिन्ह है और हम स्वयं उन्नति करते हैं। माना कि वेदान्ती और ज्ञानी उसको कल्पना कहें मगर सिकुड़ना और काट छाँट करना भी तो कल्पना है। वह कल्पना से स्वतन्त्र कहाँ हुये हैं! जब वह स्वतन्त्र हो जावेंगे तब हम उनकी बात सुनेंगे परन्तु केवल वाचक ज्ञान को ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। हम क्यों न संसार को संसार की दृष्टि से देखते हुये उन्नति करें और जब ध्रुव पद तक पहुँच जावेंगे तब देखा जायेगा।

धार्मिक शिक्षा में बहुत सी बातें मुख्य मुख्य समय के लिये ठीक होती है। हर समय यदि इन सबको मिलाकर देखा जायगा तो कष्ट होगा। जिस समय जो विचार दृष्टि में हो उसी के साथ सम्पर्क रखने में भलाई होती है। ज्ञान की भूमिका और है तथा कर्म व उपासना की भूमिका और है अतः इन सबको मिलाना नहीं चाहिये इस समय हम जीवन के विषय पर वार्ता कर रहे हैं इसलिये दृष्टि को केवल इसी हद तक सीमित करके इसके सार को ग्रहण करना चाहिये। जीवन उन्नति चाहता है। हम क्यों ईश्वर की पूजा करते हैं? अपने लिये या ईश्वर के लिये? ईश्वर के लिये न तो कुछ करना हैं न धरना है। वर्तमान स्थिति में जो कुछ किया जाता है या हो रहा है वह अपने लिये है। हर बात और हर कार्य के पर्दे में कोई न कोई उद्देश छिपा रहता है। बिना उद्देश्य के विचार के कोई काम नहीं होता। यदि उद्देश कर्म को कराने या गति देने वाला है तो हर बात में उद्देश रहता है और यह उद्देश वास्तव में अपनी आत्मा अथवा जीवन के उद्धार और प्रसार के लिये है। आदर्श और उद्देश को थोड़ी देर को दूर करके हम तुम्हारा ध्यान इसी की ओर आकर्षित करना चाहते है। अन्तिम उपदेश में याज्ञवल्क ऋषि ने अपनी

जिज्ञासु पतिनी से जो कुछ कहा है वह तुम को भी सुनाते हैं इस पर ध्यान दो:—

(५)"ऐ मैत्री ! पति पति के विचार से प्रिय नहीं हैं किन्तु आत्मा के ख्याल से पति प्रिय है। निःसंदेह स्त्री स्त्री के विचार से प्यारी नहीं है किन्तु आत्मा के ख्याल से स्त्री प्रिय है। निःसंदेह पुत्र पुत्र के विचार से प्यारे नहीं हैं किन्तु आत्मा के ख्याल से पुत्र प्यारे हैं। निस्संदेह धन धन की दृष्टि से प्यारा नहीं है किन्तु आत्मा के विचार से प्यारा है। निस्संदेह ब्रह्म ब्रह्म के विचार से प्रिय नहीं है किन्तु आत्मा के ख्याल से प्यारा है। निस्संदेह क्षत्री क्षत्री की दृष्टि से प्यारा नहीं है किन्तु आत्मा की दृष्टि से क्षत्री प्यारा है। इसी प्रकार लोक लोक के विचार से अथवा देवता देवता के विचार से और जीव जीव के विचार से, वेद वेद के विचार से, भूत (तत्व) भूत के विचार से प्रिय नहीं है किन्तु आत्मा के विचार से प्यारे हैं। निस्संदेह सृष्टि सृष्टि के विचार से प्रिय नहीं है किन्तु आत्मा के विचार से प्रिय है। निस्संदेह कोई वस्तु वस्तु के विचार से प्रिय नहीं है किन्तु आत्मा के विचार से प्रिय है। ऐ मैत्री ! निस्संदेह आत्मिक साक्षात्कार श्रवण, मनन से, जानने से यह सब कुछ माना जाता है।

(६) जो आत्मा से परे दूसरे स्थान पर ब्रह्म को जानता है ब्रह्म (ब्राह्मण) उसको दूर फेंक देता है। क्षात्र (क्षत्री) इसको दूर फेंक देता है जो आत्मा से दूर लोकों को जानता है। देवता उसको दूर फेंक देते है जो आत्मा से दूर देवताओं को जानता है। तत्व उसे दूर फेंक देते हैं जो आत्मा से दूर तत्व को जानते हैं। सब वस्तुयें इसको दूर फेंक देती हैं जो आत्मा से दूर सब वस्तुओं को समझता है। यह ब्रह्म है। यह क्षात्र है। यह लोक हैं। यह देवता हैं। यह भूत हैं। सब कुछ है वह आत्मा है। आत्मा ही जीवन हैं, यही जीवन का आदर्श उद्देश पूर्ण अवस्था है। और इसी के अनुकरण के हेतु

सब कुछ कहा सुना और किया जाता है। यह मिलाप है इसी में उन्नति है और इसी में ध्यान, ज्ञान, कर्म और उपासना योग भोग सब कुछ है। यह कारण है कि यह प्रिय वस्तु है। परन्तु प्रश्न यह है कि यह जीवन किस प्रकार मिले। लाख बाहरी उपाय सोचे जाँय जीवन त्रुटि पूर्ण और सीमित रह जाता है। दुनियां के सामान इसकी सन्तुष्टी के लिये पर्याप्त नहीं होते। यही कारण है कि मनुष्य को सन्तोष नहीं होता। यहाँ भी धर्म ही मनुष्य के काम आता है। वह सुनने वालों को कहता रहता है कि जीवन तुममें और तुम्हारे अन्दर है। तुम स्वयं जीवन हो। इस कारण अपने आपको समझो जिससे भेद भाव दूर हो। जब तक भेद भाव है जीवन त्रुटि पूर्ण है। त्रुटि पूर्ण और सीमित जीवन दुख का कारण होता है। पृथकता दुख है। मिलाप और एकता सुख है।

अपने से अपने को अन्तर मिलो। अपने को अपने अन्दर देखो। अपने को अपने अन्तर करो तब तुमको वास्तविक जीवन अपने भीतर प्राप्त होगा।

बस सिद्ध हुआ कि धर्म के तीन महान उद्देश हैं—सुख, ज्ञान और जीवन और वह उन्हीं की प्राप्ति का साधन बताता है। अब तुम को अधिकार है धर्म का महत्व समझ कर उससे मन लगाओ या न लगाओ। हमको जो कुछ आता था सुना दिया। मनवाने का हमने ठेका नहीं लिया है।

—:०:—

छटवां सन्देश

आन्तरिक दृश्य

हर जीवधारी सुख, जीवन और ज्ञान का इच्छुक है। इस इच्छा से किसी एक व्यक्ति को मुक्त नहीं किया जा सकता। यह

तीनों व्यवहारिक अर्थों में दूसरे की दृष्टि में यद्यपि विभिन्न विचारों को पैदा करते हैं मगर सार और वास्तविक के विचार से एक ही उद्देश की ओर संकेत करते हैं। हमारा अस्तित्व स्वयं सुख, ज्ञान और जीवन है। आत्मा को सत-चित-आनन्द भी कहते है। सत जीवन है, चित बुद्धि और विवेक है और आनन्द सुख है। यदि तुम इनमें से केवल किसी एक को अपने मन में स्थान दोगे तो शेष दो स्वयं उसके साथ सम्मिलित दिखाई देंगे। कारण कि वे तीनों वास्तव में एक ही हैं और हम इन तीनों ही से बने हैं। समझाने बुझाने की दृष्टि से यह कहा जाय कि हम इन्हीं तीनों चीजों से बने है तो गलत न होगा। यही कारण है कि हमारा जीवन इन्हीं की खोज में व्यतीत होता है और हम उन्हीं की प्राप्ती में लगे रहते हैं। मछली पानी से कभी बाहर नहीं रह सकती। उसको पानी से अलग कर दो वह एक क्षण में मर जायगी क्योंकि वही उसका वास्तविक मूल है। यही हमारी दशा है। हम सच्चिदानन्द समुद्र की मछलियां हैं। हम चाहे जीवन की जिस दशा में रहें या रक्खे जांय जीवन की किसी दशा में इन तीनों के बिना एक क्षणभी जीवित नहीं रह सकते। जीवन ही स्वयं ज्ञान है। यदि ज्ञान न हो तो फिर जीवन का भान कैसे होगा और हम जीवन को जीवन कैसे कह सकेंगे। इसी भान बोध में आनन्द और सुख है। हम यहाँ इन शब्दों को विस्तृत अर्थों में प्रयोग कर रहे हैं जिसमें जीवन का उद्देश सम्मिलित है चाहे वह किसी क्षेत्र में क्यों न हों।

हमारी दृष्टि में जीवन, ज्ञान और सुख तीनों एक ही वस्तु हैं। आगे चलकर इस संदेश के शीर्षक में हम अपने मन्तव्य को केवल एक शब्द तक ही सीमित रखेंगे और सुख को ही धर्म के वास्तविक उद्देश को समझाने का प्रयत्न करेंगे। इससे यह न समझा जाय कि ज्ञान और जीवन धर्म का उद्देश नहीं है। वह भी हैं। मगर चूंकि तीनों

एक ही हैं इसलिये एक ही बात सामने रक्खेंगे कारण कि जो परिणाम एक से निकलता है वही शेष दो से भी सम्भव है। पाठक या तो इनके विषय पर स्वयं सोचते रहें या उनको भी इसी एक शब्द 'सुख' में सम्मिलित समझें।

समझदार और भावुक जीव को सुख दुख का ज्ञान केवल उस समय तक होता है जब तक वह जाग्रत अवस्था में रहता है। यदि वह जाग्रत अवस्था को पार करके निद्रा की अवस्था में चला जाय तो वह दुख को भूल जावेगा और जो परिस्थियां दुख का कारण हो रही थीं क्षण मात्र में गुप्त हो जायेगी। इस निद्रा की दशा में भी विशेष प्रकार का दुख सुख है यद्यपि वह जगत के दुखसुख से भिन्न अवश्य है।

निद्राका दुख सुख सूक्ष्म और जाग्रत अवस्था का स्थूल है। यह उनमें अन्तर है अन्यथा वह एक दूसरे के समान कहे जा सकते हैं। जो अवस्था हृदय को सबसे अधिक प्रिय है वह सुषुप्ति अथवा गहरी नींद की है जिसमें संसार के सुख दुख दोनों को मनुष्य भूल जाता है। जिस तरह धूप का सताया मनुष्य किसी ठंडे पानी की झील में स्नान करे तो धूप की गर्मी की व्याकुलता का विचार तक जाता रहता है, इसी तरह सुषुप्ति की अवस्था में जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाय लय हो जाती हैं। सुषुप्ति का स्थान जाग्रत स्वप्न से परे है। जहां स्वप्न जगत की सीमा समाप्त होती है, उसकी सीमा शुरू होती है। इसमें न दुख है न सुख है किन्तु ऐसा आनन्द है जिसको जिह्वा वर्णन नहीं कर सकती। हमको हर समय उनकी खोज और उससे मिलने की चिन्ता रहती है और हममें से कोई भी ऐसा नहीं है जो इसका इच्छुक न हो।

आत्मा जाग्रत अवस्था में दोनों के बीच अपनी अपेक्षा रखती है और वहाँ बैठकर बाहरी इन्द्रियों की सहायता से इस बाहरी जगत के सुख के सामान अपनी ओर खींचती रहती है। यह दसों

इन्द्रियाँ उसी तरह आत्मा की सेवा करती है जिस तरह कारीगर अपने औजारों से काम लेता है। विचार करने से ज्ञात होगा कि यह इन्द्रियाँ शरीर से बिल्कुल भिन्न हैं। फिर भी संसार में ऐसे बहुत से मनुष्य मिलेंगे जो या तो शरीर को ही अपनी वास्तविकता और अपना निज रूप समझते हैं या मन को वास्तविक तत्व मानते हैं। इन दोनों में से कोई भी अपने विचार में ठीक नहीं है। दोनों ही भूल पर हैं। देह, मन और आत्मा अस्तित्व (हस्ती) के इस मंडल में एक वस्तु कैसे हो सकते हैं। परिश्रम के काम के पश्चात शरीर और मन दोनों थक जाते हैं। प्राय: यह दशा हो जाती है कि वह अपना काम नहीं कर सकते हैं मर जाते हैं परन्तु आत्मा बराबर बनी रहती है। इस कारण देह और मन को भूलकर भी आत्मा न समझना चाहिये। यदि हम ध्यान पूर्वक अपने चारों ओर देखें तो हमको ज्ञात हो सकेगा कि प्रकृति में अभिव्यक्ति (इजहार) के तीन भिन्न मंडल हैं। सबसे पहिले असली अस्तित्व का मंडल रहता है। दूसरे वह मंडल जो बीच वाला हैं जिसके सहारे काम होता है। तीनों ही काम के प्रगट करने के लिये आवश्यक हैं। जब हम इनके काम के दृश्यों को देखेंगे तो उनमें से किसी एक को भी नहीं त्याग सकते।

यही नियम आत्मा के सम्बन्ध में भी कार्य करता है। आत्मा बीच वाले और निचले मंडल से अलग है, जिसकी सहायता से जहाँ काम हो रहा है, वह इनसे भिन्न है।

जब आत्मा का सम्बन्ध जाग्रत अवस्था से होता है वह इन्द्रियों से काम लेती है और जब स्वप्न की अवस्था में जाती है, इन्द्रियों को त्यागकर वैसे ही अलग कर देती हैं जैसे मनुष्य सोते समय अपने कपड़े उतार कर किसी खुंटी से टांग देता है। स्वप्नावस्था में सूक्ष्म इन्द्रियों के साथ खेल कूद करती है जो शरीर के अन्दर हैं और बाहरी इन्द्रियों से भिन्न हैं। इनकी भिन्नता, सूक्ष्मता और स्थूलता की दृष्टि से है। जाग्रत अवस्था में वह बाहरी सुखों की चिन्ता में थी और स्वप्न

में उसकी दशा बदल गई और यहाँ आकर अपने मन की सहायता से तमाम आवश्यक वस्तुओं को उत्पन्न करने की शक्ति प्राप्त कर लेती हैं। स्वप्नावस्था के क्षेत्र में न पृथ्वी है न समुद्र है न घोड़े हैं न हाथी हैं किन्तु जहाँ उसने विचार किया कि उसी समय सब कुछ क्षण मात्र में पैदा हो जाता है और केवल विचार शक्ति की सहायता से सब कुछ उसके सामने आजाता है। यहां कोई काम उसके लिये कठिन या असम्भव नहीं है। जो चाहती है उत्पन्न कर लेती है और जहाँ चाहती है घूमती फिरती है। यहां न कोई रोक टोक हैं और न कोई बन्धन है। परन्तु इस स्थान पर आकर यह न समझना चाहिये कि यही अवस्था सब कुछ है। इसमें संदेह नहीं कि इसका अधिकार बढ़ गया। पहिले की अपेक्षा वह स्वतन्त्र भी है मगर जो सुख इस नींद की दशा में इसको मिलते हैं वह बिल्कुल शुद्ध और पवित्र नहीं होते। उनमें दुख मिला रहता है। कभी कभी ऐसा समय आ जाता है कि वह विशेष प्रकार के कष्टों का केन्द्र हो जाता है। वह दुखदायक व्यक्तियों को उत्पन्न कर लेती हैं अथवा यों कहो कि उनका स्वप्न देखती है। उसने अपने विचार की धारों से बने हुये जीव डरावना रूप दिखाकर परेशान कर देते हैं। ऐसे भयानक रूप सामने आ जाते हैं जिनके देखने से रौंगटे खड़े हो जाते हैं। कल्पित चोर आकर चोरी करने लगते है। इसको इनके साथ लड़ना झगड़ना पड़ता है। ऐसी आपत्ति सिर पर आजाती है कि बड़ी व्याकुलता होती है। कभी कभी तो ऐसी जान की ग्राहक दशा होती है कि जिस की दुनियाँ में कल्पना तक नहीं होती। कभी कभी तो वह जागने पर भी इन आपत्तियों को याद करके डरती है। ऐसी घटनायें सम्भव है स्वप्न में सब पर आई हों या आती हों।

मगर सुषुप्ति की दशा इससे बिल्कुल भिन्न है। इस क्षेत्र में आकर वह मन की सूक्ष्म इन्द्रियो को भी परे फेंक देती है। वहाँ न मन है, न देह और स्थूल इन्द्रियां हैं। आत्मा अपने प्रकाश (ज्योति)

से आप प्रकाशवान हो रही है। न किसी बात की इच्छा है न लालसा है। यहाँ आकर वह सीमित नहीं है। त्रुटि और सीमा से अलग होकर जब उसे किसी का सौदा नहीं रहता तो वह स्वयं सुख रूप हो जाती है। क्या इस अवस्था से नीचे उतर कर तुम यह नहीं कहते कि ओह ! कैसी अच्छी नींद थी जिसमें दुख दर्द का नाम तक नहीं था। संसार के झमेलों से छुटकारा पाकर प्रसन्न थे। सुख का ज्ञान तो तुमको अवश्य रहता है। यह दूसरी बात है कि तुम भली प्रकार उसको प्रगट न कर सको। अज्ञानी से अज्ञानी इससे अनजान नहीं हैं चाहे इनके विचार करने, प्रगट करने और समझने में भिन्नता हों मगर इस दशा की इच्छा सबको होती है।

यह अवस्था भी आत्मा की अवस्था नहीं है। यह भी जंजीर की एक कड़ी है जो देह और मन के परे है मगर अब तक असली आत्मिक अवस्था और उसमें अन्तर हैं इसमें एक प्रकार का ज्ञान है और जागने पर तुम स्वयं ही ऐसे शब्दों में इस ज्ञान को मानते हो कि ऐसे सोये कि तन बदन की सुधि न रही।

सातवां सन्देश

आन्तरिक दृश्य (लगातार)

इन तीनों अवस्थाओं पर ध्यान दो। पहिली अर्थात् जाग्रत अवस्था में यह आत्मा ही थी जो सुख का भोग कर रही थी। क्या इन्द्रियाँ आनन्द ले रही थीं ? नहीं, क्योंकि यह निर्जीव हैं। इनको आत्मा की धार से शक्ति मिलती है। आत्मा की जीवन धार ने ही इनको जीवित कर रक्खा था। यदि यह धार किसी प्रकार ऊपर

को खिच जावे अथवा शरीर के अंगों में उनका आना बन्द हो जावे तो वह निरर्थक हो जाँय। हाथ उसकी गति से गतिमान है। हाथ पर एक बन्द बांध दो। वह गति रहित हो जाता है।

तुम कहते हो मेरा पांव सोगया। वास्तव में वह सोया नहीं किन्तु दब जाने के कारण धार का आना बन्द होगया था। इसी तरह यदि वह धार जिभ्या से, नाक से और कान से खिच जाय तो उनका चखना, सूंघना, देखना और सुनना बन्द हो जाता है।

एक मनुष्य मूछित हुआ पड़ा है। धार ऊपर को खिच गई है। अब उससे कहो कि वह जिभ्या से चक्खे, कान से सुने, आँखों से देखे। यह इन्द्रियां कैसे काम करें! जिसके आधार पर यह काम होरहे थे उसने अपने आपको दूसरी ओर समेट लिया। इसकी अनुपस्थिति में कौन काम करता है! किसी को बेहोशी की दवा सुंघाकर बेहोश कर दो। धार ऊपर की ओर चली गई। होश नहीं रहा। सिद्धि शक्ति के प्रयोग से भी मूछित करके धार को उलटाया जा सकता है और उसका भी वही परिणाम होता है। विशेष विशेष रोगों में भी यही दशा होती है। सुषुप्ति अवस्था में धार शरीर के क्षेत्र को त्याग देती है और सारी इन्द्रियां निष्क्रय हो जाती हैं और उनसे फिर कोई कार्य नहीं लिया जा सकता। इस पर विचार करने से जो शिक्षा हमको मिलती है वह यह कि सुख के भोगने वाली केवल आत्मा है। इन्द्रियां या देह नहीं हैं क्योंकि देह स्वयं शक्ति वाला होता तो आत्मा के पृथक होने पर भी सुख भोग लेता।

निद्रा अर्थात स्वप्न की अवस्था दूसरी है। यहां स्थूल शरीर के साथ सम्बन्ध नहीं रहता। वहां मन कार्य करता है जिसको सूक्ष्म इन्द्रिय कहते हैं और यहाँ मन और आत्मा के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। आत्मा मन की सहायता से सब कुछ उत्पन्न करलेती है। इस अवस्था से जो शिक्षा मिलती है वह यह है कि आत्मा ही सुख की सारी सामग्री उत्पन्न करने वाली है। सुषुप्ति की अवस्था

तीसरी दशा है जहां आन्तिरिक और बाहरी इन्द्रियां कोई नहीं केवल आत्मा ही आत्मा है-क्योंकि यदि कोई और वस्तु होती तो एक दूसरे को जानता। वास्तव में यहां दूसरी वस्तु नहीं होती। यह दशा बड़े सुख की है इससे यह शिक्षा मिलती है कि आत्मा स्वयं ही सुख स्वरूप है।

यह तीनों बातें हमको इन तीन दशाओं पर विचार करने से प्राप्त हुईं।

(१) सुख भोगने वाली आत्मा है। शरीर और इन्द्रियां नहीं हैं।

(२) सुख उत्पन्न करने वाली आत्मा है और वह मन से सुख उत्पन्न करती है।

(६) आत्मा स्वयं सुख है इसके अतिरिक्त कोई और सुख नहीं है।

यहाँ इस पर निचले लोक में बैठे हुये तुम सुख की इच्छा करते हो और समझते हो कि सुख किसी और वस्तु में हैं और उससे सम्बन्ध पैदा करने के इच्छुक होते हो। वाह्य जगत में क्या सुख है। यह गलती है। यहां जो कुछ सुख तुमको बाहर से मिलता है वह तुम्हारे भीतर से आता है। प्रकृति के चुलबुले रूप तुमको सुखी नहीं करते। तुम आप अपने भीतर से सुख की सामग्री निकाल कर बाहरी वस्तुओं पर उनका प्रतिविम्ब डालकर लट्टू हो जाते हो। सुख न स्त्री में है न संतान में, न धन दौलत में। मान लो तुम किसी बाग में मन बहलाव करने गये। क्यारियों में फूल खिले हैं। पक्षी गाते और चहकते हैं। तुमने समझा वृक्षों के दृश्यों से प्रसन्नता मिल रही है। मन लगा हुआ है। अभी तुमको अपने पुत्र की बीमारी का तार मिला। इस सूचना से तुम्हारे मन की दशा बदल गई। बाग से कहो कि तुमको अब प्रसन्न करे! फूलों से कहो कि वह व्याकुलता को दूर करने का सामान बनें मगर वह विवश हैं। वही वस्तुयें जो

सुख देने वाली समझी जाती थी अब आखों में कांटों की तरह खटकती हैं। उनका प्रभाव उल्टा पड़ रहा हैं। अब बाग का प्राकृतिक सौन्दर्य किधर चला गया ? अब वह क्यों मनोरंजन का कारण नहीं है ? क्योंकि पहिले भी उसमें मनोरंजन नहीं था। मन ने कल्पना कर ली थी। व ल्पित मनोरंजन था। जाता रहा। इसलिये सुख बाहर नहीं है तुम्हारे अन्दर है। यदि हमारी मानो तो और तुमसे हो सके तो अपने ही अन्तर सुख की खोज करो। इधर उधर न भटको।

हमने कहीं कहा था कि हम अपने विचार प्रगट करने में केवल सुख के शब्द को सामने रखकर सत पद (हकीकत) को प्रगट करेंगे। यदि तुमको तुम चाहो तो लगे हाथ तुम्हारे निज स्वरूप और गुणों की ओर ध्यान दिलाकर बताते चलें कि जिस तरह आत्मा सुख है वैसे ही आत्मा बुद्धि और जीवन भी है। सत, चित, आनन्द तुम्हारा आस्तित्व है। जाग्रत अवस्था में तुम बाहरी सामान को देखकर, पुस्तकों को पढ़कर, दूसरों की बातें सुनकर विचार विवेक करते हो। निद्रावस्था में इन सब बातों के अभाव में तुम समस्त बुद्धि और विवेक की बातें अपने अन्दर (मन) से उत्पन्न करते हो। सुषुप्ति में साक्षात् बुद्धि होकर पड़ रहते हो और उठते ही अनुभव करते हो कि वह कैसी हालत थी। इससे फिर तुमको वही तीन शिक्षायें मिलती हैं:—

(१) बुद्धि वाली और विवेक करने वाली आत्मा है।

(२) बुद्धि के उत्पन्न करने वाली आत्मा है।

(६) आत्मा स्वयं बुद्धि है।

जिन लोगों का वह विचार है कि बुद्धि स्कूल और कालिजों में जाने से आती है वह भूल पर हैं। यदि स्कूल और कालिज में बुद्धि का रहना सम्भव होता तो मेज, कुर्सी, ईंट और पुस्तकालय की अलमारियां और कीड़े और मकोड़े जो कागज की स्याही चाटते रहते हैं, ज्ञानी हो जाते अथवा जितने आदमी इन

पाठशालाओं में आया जाया करते हैं तो सब के सब विद्वान और बुद्धिमान होते। यह केवल मन के टिकने और बाहरी रूप से ख्याल देने के सामान हैं। ज्ञान जो कुछ है वह तुम्हारे अन्दर है। तुममें से लड़कों को जो शिक्षा दी जाती है वह वास्तव में मन के संभालने और विकसित करने के उद्देश से है। जिसकी जैसी और जिस श्रेणी की शिक्षा होती है वह वैसे ही अपने अन्तर से विद्या और बुद्धि के समान उत्पन्न करता है और विद्वान और बुद्धिमान बन जाता है। चित्रकार चित्र को कहां मे लाता है? अपने अन्तर से लाता है। जो कुछ है अपने अन्तर है। बाहर उसका प्रतिविम्ब रूप है।

इस प्रकार जाग्रत में जीवित रहने, जीवन स्थित रखने और जीवितों की सूची में प्रवेश करने से तुम स्थूल भोजन खाते हो। स्वप्न में कल्पित रूप से जीवन के सामान पैदा करते हो और सुषुप्ति में जीवित रहते हो। योगी यों ही वर्षों समाधि में पड़े रहते हैं। भोजन नहीं खाते। यदि जीवित रहने की शक्ति भोजन से आती तो फिर ८-१०दिन में इनको मर जाना चाहिये था। यहाँ भी सोचने के लिये वही तीन शिक्षा तुमको फिर मिलती हैं:—

(१) जीवित रहने वाले तुम हो।

(२) जीवन की सामिग्री उत्पन्न करने वाले तुम हो।

(३) तुम स्वयं जीवन हो।

इन तीनों दशाओं पर तुम जितना सोच विचार करते जाओगे उतना ही तुमको सोचने की सामग्री और उतना ही निज स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने की ओर ध्यान होगा। जो कुछ है तुम्हारे अन्दर है। अन्दर ही से सब कुछ बाहर आया है मगर चूंकि वाह्य जगत से अधिक सम्बन्ध पैदा कर लिया है इसलिये उसके विचार बहुत घने हो गये हैं। अन्दर की ओर कठिनाई से ध्यान जाता है। परिणाम होता है परेशानी। यदि एक बार सत वस्तु की समझ

आजाय तो यह रहस्य स्वयं प्रगट हो जायेंगें। हम कहां तक खोल खोलकर कहें! निष्ठा वालों का विषय है। यहां चूंकि संभाल और विकास का अधिक ध्यान रक्खा गया है इसलिये व्याख्या नहीं की जाती। सोचने वाले और समझने वाले के लिये इतना ही पर्याप्त है।

ऊपर जिन तीनों दशाओं का वर्णन किया गया है वह भी प्रतिबिम्ब डालती हैं। और भी स्थान या अवस्थायें शेष हैं जिनका वर्णन क्रमशः इस पुस्तक में आयेगा। जितने ध्यान और एकाग्र-चित्त से इसका अध्ययन करते जाओगे, उतना ही सत पद तक पहुँचते जाओगे।

यहां तक जो कुछ वर्णन किया गया है इसका मन्तव्य इतना ही है कि आत्मा शरीर नहीं है। यदि इसको सुगमता से समझ लो तो कहने वाले को अधिक उत्साह होगा। शब्दों पर न अटको। सारांश की ओर दृष्टि करो और काम बना बनाया हैं।

आठवाँ सन्देश

आन्तरिक दृश्य (लगातार)

जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति की दशा में हम तुम सब गुजरते हैं परन्तु तुममें से कदाचित ही किसी ने इस विषय पर इस प्रकार ध्यान दिया होगा। यदि दृष्टि अन्दर की ओर चली गई है तो और भी विचार करते चलो। देखो! कितने नये नये विचार तुमको सोचने को मिलते हैं।

तुम सत-चित-आनन्द हो और इन तीन के साथ तीन गुणों का सम्बन्ध है। जब तक दृष्टि इतनी ऊंची न हो जाय कि वह सत पद तक ठहर सके तब तक तुमको गुणों के क्षेत्र में रहना है। गुण सत, रज और तम तीन हैं। फिर इन तीनों के तीन गुण हैं—उपासना, कर्म और ज्ञान। इनकी व्याख्या विस्तार पूर्वक निम्नलिखित हैं:—

(१) सत—चित—आनन्द— (सत)
(२) सत—रज—तम— (गुण)
(३) उपासना—कर्म —ज्ञान—(काण्ड)
(४) प्रकाश—संघर्ष—एकाग्रता—(क्रिया या काण्ड का उच्चतम उद्देश)
(५) स्वप्न—जाग्रत—सुषुप्ति—(तीन अवस्थायें)
(६) ईश्वर—जीव—प्रकृति—(तीन दशायें)
(७) विराट—अव्याकृत—हिरण्यगर्भ—(ब्रह्म के तीन रूप)
(८) विष्णु—ब्रह्मा—शिव—(ब्रह्म के तीन रूप के प्रतिबिम्ब)
(९) विश्व—तेजस्व—प्राग्य—(जीव के तीन रूप)
(१०) दयाल—काल—माया—(उत्पत्ति के देश)
(११) आत्मा—मन—देह—(पिंड के तीन तत्व)
(१२) असल—नकल—प्रतिबिम्ब—(सतके प्रगट होने के लोक)

जाग्रत में कर्म है, स्वप्न में ज्ञान है और सुषुप्ति में आनन्द है। चूंकि इस मंडल या अवस्था के जीवन में तीनों से घनिष्ट सम्बन्ध होता है और इन्हीं का अभ्यास किया जाता है, इसलिये जिस तरह समस्त कार्य तीन गुणों के क्षेत्र में रहकर होते हैं वैसे ही साधारण मनुष्य जो कुछ करता है वह गुणों ही के स्थान पर बैठकर करता है और उसके सारे कार्यों में उपासना कर्म, और ज्ञान सम्मिलित रहते हैं। उपासक, कर्मकाण्डी और ज्ञानी केवल घटा बढ़ी की दृष्टि से नाम रक्खे गये हैं। संतमत का यह बड़प्पन है कि शब्दों में न अटकाकर सबसे कार्य लेने का आदेश देता है। केवल उनके स्थूल

रूपों को छुड़वा देता है।

यों तो स्वप्न, जाग्रत और सुषुप्ति की अवस्थायें सब पर आती रहती हैं मगर अभ्यास करने वाले जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की तीनों दशायें जाग्रत में भी उत्पन्न कर लेते हैं। जिस अभ्यास से जाग्रत में स्वयं यह दशायें उत्पन्न हो जाती है उसको 'सुरत शब्द योग' कहते हैं, जो संतों का योग कहलता है। इसके अतिरिक्त दुनियाँ में कितनी हालतें मनुष्य पर आती हैं उनका वर्णन व्यर्थ नहीं। जाग्रत में हमको इन्द्रियों के कार्य का ज्ञान होता है, स्वप्न में मन के कार्य का परन्तु सुषुप्ति में इनके अभाव होने से यह ज्ञान भी नहीं रहता। कोई कोई मनुष्य सोते रहते हैं आखें बन्द रहती हैं मगर चलते फिरते दिखाई देते हैं और कार्य भी करते है परन्तु जागने पर उनको कार्य की सुधि नहीं रहती। उस समय आत्मा इन्द्रियों से काम लेती है परन्तु मन उसी प्रकार आत्मा के आधीन रहता है कि अपने आपको विजयी नहीं कर सकता। आत्मा इस दशा में मन व इन्द्रियों से काम लेती है मगर उनको आधीन कर रखती है, यह कारण है कि स्मरण नहीं रहता। आत्मा का ज्ञान वास्तव में मन बुद्धि और इन्द्रियों के ज्ञान से भिन्न है। वह स्वयं ज्ञान है ज्ञान स्वरूप है और समाधि में भी ऐसी ही दशा उत्पन्न हो जाती है। साधारण मनुष्य समाधि को जड़ता की अवस्था कहते हैं। यह बड़ी भूल है। वह तो इसके प्रतिकूल उसके आन्तरिक प्रकाश की दशा है जिसका वर्णन करना तनिक कठिन है।

अभिप्राय यह है कि इन सब दशाओं पर ध्यान करने से सत या सचाई के सम्बन्ध में तरह तरह के रहस्य ज्ञात होते हैं जो आत्मा को इन सबसे अलग सिद्ध करते हैं।

नवाँ सन्देश

तीन प्रकार के दुख

दुनिया में दुख हैं। यह ठीक बात है। दिन के प्रकाश की तरह सत्य है। उसके होने से जितना चाहे इंकार करते चलो मगर तुम्हारा ध्यान वैसे ही उसकी ओर जायगा और उसको मानना पड़ेगा। क्या यह असत्य है ?

यह क्यों मौजूद है ? क्यों और किसलिये उसका अस्तित्व है ? इसका उत्तर सरल है क्योंकि हम मौजूद हैं। हमारे काम और हमारे विचार मौजूद हैं। पदार्थ मौजूद है। विचार की दृष्टि से पदार्थ के अस्तित्व का विचार स्वयं हमको अपने प्रभाव से कुचलता रहता है। जब तक कर्म है, तब तक फल हैं। जब तक विचार हैं तब तक विचार का प्रभाव है।

साधारणतया हिन्दुओं को कहा जाता है कि वह दुख के विचार का प्रचार करते हैं और उनके आचार्य दुख ही को विचार का केन्द्र बनाकर धार्मिक शिक्षा का प्रचार करते हैं। हम पूछते हैं कि फिर और कौन सा उपाय है जिससे काम लिया जाय। प्रत्येक वस्तु का उद्देश होता है। उद्देश का विचार स्वयं किसी कारण से पदा होता है। हिन्दू धर्म दुख प्रिय नहीं है किन्तु सुख प्रिय है। हाँ, दुख को कष्ट का कारण समझकर उससे बचने का उपाय सुझाता है और सुख के साधन का अभ्यास बताकर सच्चे सुख के आदर्श पर पहुँचने का प्रबन्ध करता है। यदि आरम्भ में दुख का विचार उत्पन्न न हो तो सुख का विचार कैसे उत्पन्न होगा ! दुख के होने पर ही सुख की चाह होती है। धर्म दुख और सुख की व्याख्या करता हुआ एक ऐसे अक्षय या अमिट सुख की ओर संकेत करता है और उसके प्राप्त करने का उपाय बताता है जो अपने अन्दर है और अपने अधिकार में है।

उपदेश दिया जाता है—"प्रसन्न रहो और प्रसन्नता से जीवन व्यतीत करो।" कहने को तो यह शब्द कानों को बड़े प्रिय लगते हैं मगर इनसे इस बात का पता नहीं मिलता कि किस तरह से रहें कि दुख न हो। दुनियां में हर जगह दुख दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी कभी ऐसी घटनायें आ जाती हैं कि उसकी दशा दयनीय हो जाती है। यह लोक मिश्रित रचना का हैं। जहाँ द्वन्द की रचना होगी वहाँ दुख कैसे न होगा। जब एक से दो होते हैं तब ही खटपट होती है। हजार प्रयत्न करो कोई न कोई समय ऐसा अवश्य आ जायगा जब दिलों में मन मुटाव और वैमनस्य होगा। यदि तुमको दावा है तो इस रचना में हमको ऐसा कोई जीव दिखादो जिसको कभी दुख नहीं होता हो और वह सदा प्रसन्न रहता हो। दृष्टि (केवल देखलेने) का अंग और है तथा क्रियात्मक (अमली) अंग और है। यहाँ किसी बात का ठिकाना नहीं है। क्षण मात्र में क्या हो जायगा कोई नहीं जानता। दुनियाँ आशा पर अवश्य स्थित है मगर आशा और प्रतीक्षा भी तो दुख से बिल्कुल रहित नहीं हैं। पग पग पर गड्ढे हैं। पल पल पर परीक्षा के अवसर आते रहते हैं। परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। परिवर्तन में दुख होता है। इसको हर एक समझ सकता है प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न रहना चाहता है। इससे कौन मना कर सकता है मगर एक समय ऐसा आजाता है कि कोई अचानक ही आपत्ति सिर पर आ जाती है अथवा कोई सम्बन्धी समय से पहिले दुनियाँ से कूंच कर जाता है। चलते फिरते अचानक हाथ पाँव में मोच आ जाती है। तब दुखी होना पड़ता है। कुछ लोग दुख से घबड़ा कर आत्म हत्या कर बैठते हैं। मुअत्तली, बरखास्तिगी, अपमान, रोग, मृत्यु अभिप्राय यह है कि हजारों प्रकार के दुख हैं। इनके लिये समय नियत नहीं है। कौन जाने यह कब सिर पर आ पहुँचें। उस समय बताओ तुम दुखी होगे या सुखी! क्या इनकी ओर से आँखें मीची जा सकती हैं?

हजार आँखें बन्द करो तुम्हारी आँखें बन्द करने से होता क्या है। माना तुम दृढ़ संकल्प वाले सही मगर दूसरों का क्या करोगे ! दूसरों की विचार शक्ति तुम पर आक्रमण करेगी और तुमको कुछ न कुछ अवश्य इससे प्रभावित होना पड़ेगा।

हिन्दू इस बात को जानते थे और उसके बदले कि वह दुख की घटना के अस्तित्व को न मानते, साहस के साथ उसका सामना करके उस पर विजय प्राप्त करने के उपाय सोचते थे। समस्त फ़िलोस्फी की शाखायें इस प्रयत्न का फल हैं।

कुछ फिलोस्फरों ने तीन प्रकार के दुख वर्णन किये हैं:— अधिभौतिक, अधिदैविक और आध्यात्मिक।

अधिदैविक दुख वह है जो देवताओं के कारण होता है। देवता प्रकृति की शक्तियों का नाम है। वह प्रत्येक मनुष्य क्या प्रत्येक जीव के जीवन पर प्रभाव डालते हैं। उनका प्रभाव उस क्षेत्र के सम्पूर्ण जीवों पर पड़ता है और उसका प्रभाव एक विशेष प्रकार का होता है। सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, बिजली, अग्नि, जल, वायु यह सब प्रकृति की शक्तियाँ और देवता हैं। इनके प्रभाव भी विचित्र हुआ करते हैं। प्रायः जीव इनके प्रभाव के शिकार होते रहते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक उनके कारण दुख हुआ करते हैं और होते रहेंगे।

अधिभौतिक दुख वह है जो भूतों (स्थूल तत्वों) के कारण होते है। इसमें हर प्रकार के पशु पक्षी आदि सम्मिलित हैं।

अध्यात्मिक दुख वह है जो अपनी निजआत्मा या मन के कारण होता है। यह सब से अत्यन्त भयानक होता है। मनुष्य की सांसारिक बुद्धि जितनी विकसित होती जाती है यह दुख भी वैसे ही सूक्ष्म रूप धारण करके उसको सताते है। घृणा, अनुराग, लालच, हविस, द्वेष मत्सर सब इसकी गिनती में आजाते हैं। दूसरे दुख तो

सहन भी किये जाते हैं किन्तु इनकी मार बुरी होती है। जो दुर्भागी मनुष्य अपने मनकी चोट पा जाते हैं उसके दुखों की दशा कौन कह सकता है। वह स्वयं अपना शत्रु हो जाता है। वह अपनी छाया को देख कर व्याकुल हो जाता है जैसे कि केले के पत्ते वायु के झोंके से कांपते रहते है। वह स्वयं अपने कल्पित भय और हृदय के भावों से कांपता रहता है। दूसरे दुखों की तो एक ही धार होती है मगर यह दोधारी छुरी है जो हर ओर से घायल करती रहती है। मानसिक व कल्पित दुखों का मारा हुआ मनुष्य न केवल अपने भ्रमों से चिन्तित रहता है किन्तु वह दूसरों के विचार को अपनी ओर खेंच कर उसको नर्क बना लेता है। इसकी चिन्तायें घनी होजाती है। चूंकि वह अपने मन में भयभीत रहता है उसको अपने मित्र, संबन्धियों का भी विश्वास नहीं रहता। चोर की दाढ़ी में तिनका। जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपने तारपोद की थैली में आप फंसा रहता हैं इसी प्रकार यह भी अपने दुख दायक विचारों का शिकार बनकर दुखी रहता है। दुनियां दृष्टि में अधेरी हो जाती है। तरह तरह के रोग मन से उत्पन्न हो जाते है। रक्त विकार, मंदाग्नि, चर्म और हड्डी तक पर उनका प्रभाव पहुँचता है। उसकी दशा शोचनीय हो जाती है। क्या यह दुख नहीं हैं ? यह संसार दुखों का ही घर है।

किसी किसी संत ने केवल दो प्रकार के दुख बताये हैं। एक मानसिक दूसरा शारीरिक। यह घटा बढ़ी और भी अधिक स्पष्ट है। जो अधिदैविक दुखों को नहीं मानते वह मानसिक व शारीरिक दुखों से तो मना न करेंगें।

—:०:—

दसवां सन्देश

दुख और सुख की सच्ची पहिचान

संन्तों के मार्ग में दुख और सुख का विवेचन विशेष ढंग से किया गया है। यह तो सब जानते हैं कि जब हम अन्तरीय और वाहरी कष्ट दायक दशाओं के सम्पर्क में आते हैं तो दुखका ज्ञान होता है और वह हमारे दुख के कारण इसलिये होती हैं कि हमारे देह और मन के साथ इनका मेल नहीं होता। यदि वह हमारे अनुकूल हो जांय तो सुख और आनन्द उत्पन्न हो। चूकि वह अनुकूल नहीं होतीं इसलिये दुख होता है। यदि हम तीनों प्रकार के दुखों पर, जिनका नवें सन्देश में उल्लेख है, ध्यान पूर्वक सोचें और एक एक को संतों के दृष्टिकोण से वर्णन करने लगें तो एक बड़ा ग्रन्थ बन जायगा इसलिये जान बूझ कर केवल जीवन के दैनिक व्यवहार की ओर ध्यान देते है और आशा रखते हैं कि हमारे पाठक ध्यान पूर्वक हमारी बातों का अध्ययन करेंगे क्योंकि यह संत मत के मूल सिद्धान्त हैं। यदि इनकी समझ बूझ भली प्रकार आगई तो आगे जो वर्णन किया जायगा वह भी समझ में आ सकेगा, यदि यह सिद्धान्त समझ में न आये या इनको छोड़ दिया गया तो फिर संत मत की असलियत का पता पाना कठिन होगा।

हम देखते हैं कि यदि हम किसी वस्तु में अपना ध्यान जमा दें तो हमको प्रसन्नता और सुख मिलता है। यदि किसी कारण हमारा जमा हुआ ध्यान बगात उस वस्तु या दृश्य से हटाया जाय तो हम को दुख होता है। अनुभव बताता है कि यह अक्षरशः ठीक है। इसलिये दुख सुख की सच्ची पहिचान केवल ध्यान की न्यूनता व अधिकतम सम्पर्क और हटाव तथा घनिष्टता और दूर होने में छिपी रहती है। हमने किसी दृश्य को ध्यान से देखना शुरू किया। उससे मिल कर एक हो रहे। वहां हम इतने प्रसन्न हो जाते हैं कि अपने

आप को भूल जाते हैं किन्तु यदि कोई हमारा ध्यान उससे हटादे तो हम दुखी हो जाते हैं जैसे हम इस समय लिख रहे है और उसमें दत्त चित्त हैं। यदि कोई व्यक्ति आजाय और विवश लिखने को छोड़ कर उसकी ओर आकर्षित होना पड़े तो उस समय दुख होगा। दुख क्यों हुआ ? क्योंकि ध्यान हटाया गया। उसको अपना केन्द्र छोड़ना पड़ा। दूख और सुख का कारण इसलिये और कुछ नहीं है। हममें है और हमारे अन्दर हैं। चित की एकाग्रता की श्रेणी हुआ करती है और उन्हों के अनुसार हमारे सुख और दुख को घटा बड़ी की जा सकती है।

मनुष्य अपने ध्यान को जितना किसी से जोड़ेगा उतनी ही प्रसन्नता उसको होगी और जितनी कड़ाई के साथ उससे हटाया जायगा उतना ही उसको दुख होगा। ध्यान के एक ओर लग जाने से आदमी स्वयं अपने आस पास की स्थिति से बेसुध हो जाता है और उस ओर से चित्त के जबरदस्ती हटाये जाने से उसको दुख होता है। एक उदाहरण तो ऊपर आ गया। दूसरा उदाहरण एक ज्योतिषी का है, जो हाथ में दूरबीन लिये हुये आकाश पर तारागणों के चक्कर को देख रहा है। वह अपने ध्यान में इतना तल्लीन है कि उसको सिवाय अपने प्रयोजन के और किसी का ज्ञान नहीं है। चाहे तेज धूप पड़ रही हो, कितना ही शोर मचाया जाय मगर उसको कोई चिन्ता नहीं है। उस जगह बैठा हुआ वहाँ नहीं है। चित्त आकाश पर गढ़ा है और तारागणों का समूह आखों के सामने है। उस समय यदि किसी ने आकर उसके ध्यान को हटा दिया तो परिणाम यह होगा कि वह बहुत दुखी होगा। सम्भव है दूरबीन भी उसके हाथ से गिरकर अलग जा पड़े और उसके मन बुद्धि को चोट पहुँचे।

एक पिता ने अपने ध्यान या विचार को अपने पुत्र से लगा रक्खा है। उसको देखता सुनता है और उसके रहन सहन में सुख

की खोज करता है। उसके सुख का केन्द्र पुत्र है। यदि कहीं अचानक से लड़के की मृत्यु हो जाय तो उस अज्ञानी बाप का ध्यान उससे हट जायगा और वह ऐसे असह्य दुख का शिकार होगा कि जिसका वर्णन करना कठिन है। इस दुख और सुख के दृश्य की व्याख्या केवल इतनी ही है कि उसका ध्यान एक वस्तु पर गढ़ा हुआ था। जब तक एक वस्तु से लगाव था, वह सुखी था। जब वृति वहाँ से जोर के साथ किसी कारण हटाई गई वह अत्यन्त व्याकुल हो गया। यही नियम हर जगह काम करता है। सुख और दुख स्वयं कोई वस्तु नहीं है। केवल मन के ध्यान के लगाव व हटाव का विषय है। हमको सुख और दुख का अनुभव इसी प्रकार हुआ करता है।

दत्तात्रेय अनुसुइया के पुत्र थे। उन्होंने ध्यान तथा मन के लगाव का रहस्य भिन्न भिन्न पशु पक्षियों की दशा के अध्ययन से सीखा। बगुला, मुरगाबी आदि इस विषय में उनके गुरु बने।

छोटे बच्चे का मन बहुत शीघ्र एक ओर लग जाता है। इसी कारण उसको खिलौने गुड़िया अथवा कागज के चित्रों से प्रसन्नता मिलती है। शतरंज के खेल में मन चूंकि अधिक लग जाता है वह विशेष प्रकार के आनन्द का कारण होता है। आनन्द और किसी वस्तु में नहीं है, केवल ध्यान की एकाग्रता में है। बच्चों का मन शीघ्र एक ओर लग जाता है और साथ ही सरलता से हट जाता है मगर अधिक आयु वालों की दशा इसके प्रतिकूल है। इस कारण बच्चे को दुख कम होता है और उनको अधिक होता है। मनोरंजन, खेलकूद, सैर तमाशे के बारे में भी यही नियम काम करता है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

इसी ध्यान को संत मत में सुरत कहते हैं। और सुरत को दूसरे अर्थों में जीव समझा जाता है। आगे हम ध्यान की जगह 'सुरत' का प्रयोग करेंगे।

ग्यारहवाँ सन्देश

ध्यान ही हमारे अन्दर सुरत अर्थात आत्मिक धार की अभिव्यक्ति है।

हमारे शरीर के अन्दर कोई वस्तु ऐसी है जो इसके संपूर्ण अंग, नस नाड़ी को शक्ति देती है और हमको जीवित रखती हैं। हम केवल उसके कारण जीवित हैं और जीवित रहकर काम काज करते हैं। यह वस्तु हमारी शारीरिक, मानसिक, और बौद्धिक बनावट की मूल बनकर सबमें धार के रूप में फैली हुई है और रक्त माँस आदि को गति देरही है। परिभाषा में इसी का नाम 'सुरत' है। जब तक यह देह में रहती है, हर एक अंग उसके प्रभाव से अपना कार्य करते हैं, मगर ज्यों ही वह उससे या उसके किसी भाग से अपनी धार को समेट लेती है अथवा बिल्कुल ही चली जाती है तब यह शरीर निरर्थक हो जाता है और गति हीन बन जाता है। इन्द्रियाँ बेकार हो जाती हैं। न उनमें गर्मी सर्दी के भान की शक्ति रहती है न अपने आपको ठीक ढ़ंग में रख सकती हैं। आंख का देखना, दिलका धड़कना, चर्म का छूना, नाक का सूंघना और कानों का सुनना बन्द हो जाता हैं। टांगें चल फिर नहीं सकती। हाथ पकड़ नहीं सकते। जिह्वा बोल नहीं सकती। यह सब उसी एक के आधीन थीं। जब वह नहीं रही तब यह भी नहीं रहे। उसके जाते ही इनका नाम रूप तक नष्ट हो जाता है क्योंकि उनका अस्तित्व उसके होने पर निर्भर है। उपनिषद कहते हैं:—इसके जाते ही जिस प्रकार बलवान रथ, बाण के छिन्न भिन्न करने से रथ के कुल कील काँटे और पहिये बिगड़ जाते हैं। वैसे ही इन्द्रियाँ नष्ट हो जाती हैं। शक्ति जाती रहती है।

सुरत की धार अपनी अभिव्यक्ति (इजहार) मानसिक या

शारीरिक मण्डल में धार के रूप में करती हैं। इस धार की समझ और उसकी मौजूदगी का ज्ञान उदाहरणों की सहायता से सुगमता से हो सकेगा। यह तो थोड़ा बहुत समझमें आगया होगा कि यह धार जीवन के स्थित रखने और उसको नियमानुकूल चलाने में कितनी आवश्यक है मगर अब इस बात का समझना समझाना है कि कभी कभी उसके रहते हुये क्यों दुख होता है। पिछले सन्देश में बता दिया गया है कि धार की एकाग्रता में सुख और उसके हटाव में दुख होता है अर्थात जब जब यह धार अपने केन्द्र से हटाई जाती है और बलात् हटती हैं, उस समय दुख होता है। एक आदमी बीमार है, रो रहा है, चिल्ला रहा है, सुबह से शाम तक बेचैन है जिसकी कोई हद नहीं है। एक सहानुभूति वाला मनुष्य आया। उसने सहानुभूति की बातें शुरू की, तसल्ली देने लगा, रोगी का चित्त ठिकाने आगया। वह रोग का विचार भूल गया। एक क्षण में ऐसा परिवर्तन आगया कि बुद्धि देखकर चकित होगई। अब वह हंस रहा है। जो लोग असलियत को नहीं जानते वह शायद यह परिणाम निकालें कि उसने पहिले बीमारी का बहाना बनाया था। नहीं, उसके क्षणमात्र के परिवर्तन में एक रहस्य हैं जो समझने सोचने योग्य है। यह रहस्य उसके अन्दर है बाहर नहीं है। कारण यह था कि इस दुख का ध्यान बार बार दुख के स्थान पर धार के रूप में जाता था और वहाँ से ख्याली या असली रूप में हटता रहता था। इसलिये दुख होता था। धार के बार बार हटने और हटाये जाने से अत्यन्त कष्ट था। उसके मित्र या सहानुभूति वाले के आने ने यह परिवर्तन कर दिया कि उसके ध्यान की धार दुख के स्थान से बिल्कुल हट गई। अब इधर ध्यान नहीं है। ध्यान किसी दूसरी ओर है। दुख के अन्तरीय स्थान में ध्यान नहीं रहा इसलिये दुख भी नहीं रहा। ध्यान को अब न धक्का लगता है, न वह हटता है। वह अब न वहां है न हटाया जारहा है इसलिये दुख भी

नहीं है।

एक लड़का छत से गिर गया। गहरी चोट आगई। हड्डियाँ टूट गई, नस कट गई। जिस नस के द्वारा सुरत की धार चोट वाले स्थान में आती थी उसको वहाँ ठहरने का अवसर नहीं मिलता। बार बार हटाई जारही है। वह दुखी है। लेकिन साथ ही साथ प्रकृति के नियमानुसार जब वह धार बेहोशी की दशा में चोट के स्थान को छोड़कर स्वयं मस्तिष्क की ओर खिंची, दुख दर्द चला गया। रक्त चाहे बहा करे, लड़के को दुख नहीं है। दुख तो उस समय होता जब सुरत की धार चोट के स्थान पर आकर हटाई जाती। वह न वहाँ है न हटती है। उसका रुझान मस्तिष्क की ओर है जहाँ सुरत का असली भंडार है। वह समझते हैं कि बड़े दुख की बात है मगर वास्तव में लड़का दुखी नहीं है। इन दशाओं में सुरत की धार धक्का पाकर सदा मस्तिष्क की ओर चली जाया करती है। चूंकि वह कष्ट के स्थान को छोड़ बैठती हैं दुख नहीं होता। प्रायः जब घाव गहरा होता है और घाव वाला आदमी बहुत व्याकुल होता है, अनुभवी वैद्य घाव वाले स्थान पर बेहोश करने वाली दवा मल देते हैं जिससे सुरत की धार का आना बन्द हो जाता है और रोगी को दर्द नहीं होता।

यह उदाहरण शारीरिक क्षेत्र के सम्बन्ध में था। अब मानसिक क्षेत्र की ओर ध्यान दीजिये। वहाँ भी यही तमाशा दिखाई देगा। मानसिक क्षेत्र में सोचने वाला मन सुरत के विचार के प्रभाव और काम का केन्द्र बना था। शरीर में तो नस नाड़ियों की सवारी पर सुरत की धार आया करती थी। मन के क्षेत्र में यही ख्याल काम करता है। मन किसी न किसी रूप में किसी मनोरंजक ध्यान से सम्बन्ध जोड़ बैठा था और उसी के आसपास चक्कर लगाता था। जिस पर उसका कोई धक्का पहुँचा या किसी मित्र या सम्बन्धी की मृत्यु या बीमारी की सूचना मिली तो परिणाम यह हुआ कि सुरत

को जबरदस्ती वहां से हटना पड़ा और दुख का लक्ष बन गया। जिस तरह अधिभौतिक दुख शरीर में हुआ करता है उसी तरह अध्यात्मिक दुख मन के क्षेत्र में होता है। नियम वही है। हां, धार की सवारियों में अन्तर है। शरीर में नस नाड़ी जो काम देती है वहां वही काम विचार देता है। यह दशायें जाग्रत के जगत की हैं। स्वप्नावस्था में भी जब मन किसी सुखदायक कल्पित दृश्य को केन्द्र बनाता है और किसी भयानक या दुखदायक कल्पित घटना के कारण सुरत की धार को उससे बारबार हटना पड़ता है तब दुख होता है। ध्यान के केन्द्र में एकता व सुख और प्रतिकूलता में दुख होता है।

सुषुप्ति, समाधि या बेहोशी की दशा में जो दुख प्रतीत नहीं होता, इसका भी यही कारण है। कानून एक है। इस कानून को एक बार अच्छी तरह हृदयांकित कर लेने से संत मत की महिमा का विश्वास होगा और ज्यों ज्यों यह समझ में आता जायगा त्यों त्यों सुरत शब्द योग की असलियत और महत्व की भी सच्ची समझ आती जायेगी। यह संतों का योग है जो सब योगों में सर्व श्रेष्ठ है। सूफियों के सभी साधनों में इसको सुल्तानुलजिकार अर्थात् सबसे बढ़ चढ़कर माना गया हैं।

बारहवाँ सन्देश

मिलौनी के बिना सुख सम्भव नहीं

प्रकृति या पदार्थ परिवर्तन की वस्तु है। पदार्थ हमेशा बदलता रहता है। मन बुद्धि भी बदलते रहते हैं क्योंकि परिवर्तन

प्रकृति का गुण है। संसार में क्षण क्षण में परिवर्तन हुआ करता है। जो उस समय था इस समय न रहेगा। जो आज है कल उसका चिन्ह भी दिखाई नहीं देगा।

ब हर लमहा ब हर साअत ब हरदम।
दिगरगूं मीशुद अहवाले आलम॥

जहां इतनी शीघ्र शीघ्र परिवर्तन होते रहेंगे कैसे सम्भव है कि ध्यान की धार को अपने शरीरिक व मानसिक केन्द्र से हटने का अवसर न मिलेगा। यही कारण है कि लोग इस संसार को दुख का स्थान कहते हैं। यहां हर एक को दुख और कष्ट का केन्द्र बनना पड़ता है। जो वस्तु जिस समय जैसी दिखाई दे उसको उस समय वैसी ही दृष्टि से देखो और देख भालकर और अनुभव के विस्तार के साथ अपनी भलाई का उपाय सोचकर निकालो।

इन बातों पर सोच विचार करने से भली प्रकार समझ में आजायगा कि इस क्षेत्र या लोक में रह कर दुख से बचना असम्भव है। जब तक सुरत का सम्बन्ध प्रकृति, (पदार्थ) शरीर और मन के साथ रहेगा तब तक दुखी अवश्य होना पड़ेगा। इनसे छुटकारा प्राप्त करलो और जिस समय वह स्वतंत्र हो जायगी आप अपनी असली हालत में रहेगी; क्योंकि जैसे पहिले कहा गया है वह सत--चित--आनन्द है जो उसका अपना तत्व है।

जाग्रत अवस्था में सुरत का सम्बन्ध देह और इन्द्रियों के साथ रहता है और स्वप्नावस्था में उसका सम्बन्ध मन के साथ रहता है। इन दोनों मण्डलों में दुख है क्योंकि सुरत इनको अपना रूप समझकर इनसे नाता जोड़ बैठती है मगर सुषुप्ति की दशा में उनके साथ उसका लगाव नहीं रहता। वह इनसे स्वतंत्र होकर सुखी हो जाती है मगर यह दशा ठहराव की नहीं है। अधिक समय तक स्थित नहीं रहती। इन तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त एक चौथी

अवस्था है जिसको योगी तुरिया कहते हैं। यह आत्मिक अवस्था है। यदि यह प्राप्त हो जाय तो हमको दुखों से छुटकारा मिल जाय और जो दुख दर्द हमको नित्य प्रति सताते रहते हैं फिर न सतायेंगे। यह सुषुप्ति या लयपने की अवस्था नहीं है किन्तु आत्मा की असली प्रकाश की दशा है और यह अवर्णनीय है। संतों का तुरिया पद दूसरों के तुरियापद से भिन्न है। जिसको लोग तुरियातीत पद कहते हैं इससे उसका कुछ अनुभव हो सकता है।

इस अवस्था के प्राप्त करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि सबसे पहिले आत्मा की समझबूझ प्राप्त कर ली जाय। यह अच्छी तरह हृदयांकित हो जाय कि सुरत न देह है न मन है। वह इन दोनों से भिन्न है। देह और मन दोनों अपने अस्तित्व के लिये सुरत के आधीन हैं। सुरत किसी दशा में आश्रित नहीं है किन्तु पूर्णतया स्वतंत्र है किन्तु इनसे अलग होने के पश्चात् भी स्थित रहती है मगर वह आत्मा के अलग होने पर नहीं रह सकते। इन बातों की व्याख्या किसी न किसी ढंग पर पिछले संदेश में आ गई हैं। ज्यों ही वह अपनी धार को समेट लेती है त्योंही वह निरर्थक हो जाते हैं जैसा कि सुषुप्ति, बेहोशी और समाधि आदि की अवस्थाओं पर ध्यान देने से ज्ञात हो सकता है। सुरत फिर भी अपने अविनाशी प्रकाश में चमकती रहती है।

देह, मन, प्रकृति की हैसियत और आत्मा की असलियत किसी अंश तक समझ लेने के पश्चात् सच्चे जिज्ञासु को इस सुरत के भंडार का पता लगाना चाहिये क्योंकि यदि कहीं सच्चा सुख होगा तो इसी सुरत के भंडार में होगा और वहां सुख बिना मिलौनी के होगा। इस इष्ट पद तक पहुँचने के लिये बीच की कई सीढ़ियां हैं जैसे कोठे पर चढ़ने के लिये जीने में हुआ करती हैं

जो सुरत हममें और हमारे अन्दर रहती है वह असल भंडार

में से केवल एक कण है अथवा समुन्द्र की बूंद या सूर्य की किरण के समान है। इसके महत्व पर विरोध करना गलती है, क्योंकि उसके कारण जीवन और उसकी अभिव्यक्ति की सूरतें उत्पन्न होती हैं। सुरत जिधर अपनी तवज्जह करती है उधर ही आश्चर्य जनक परिणाम उत्पन्न होते हैं। आविष्कार, कला कौशल, सभ्यता किससे पैदा हुये हैं। सबकी अभिव्यक्ति सुरत के कारण है। अब समझना चाहिये कि इस बूंद की दशा यह है तो इसका अनुभव कौन लगा सकता है जो सबका आदि भंडार है।

इस शरीर में हर जगह हर वस्तु के भंडार हैं। सूक्ष्म, स्थूल तत्वों के भी भंडार रचना में हैं। बुद्धि और साहस आदि के गुण के भी भंडार हैं और इन्हीं भंडारों से जगत में उनके गुण वितरण किये जाते हैं। संतों का कथन है कि सूर्य अपने ग्रह और तारागणों सहित विशेष विशेष धारों और शक्तियों का भंडार है। सूर्य स्वयं, जीवन, गर्मी और शक्ति का भंडार है। चन्द्रमा अध्यात्म का भंडार है। हमारा अभिप्राय उस चन्द्रमा से नहीं है जो पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगा रहा है किन्तु यह वह चन्द्रमा है जो इस सौर्य मंडल की सूर्य की चोटी पर हैं। इसी प्रकार बृहस्पति बुद्धि का, मंगल वीरता का भंडार है। और भी इसी तरह बहुत से हैं।

जो जो लोक, ग्रह, तारागण इस सौर्य मंडल में हैं उन सबके प्रतिबिम्बत रूप मनुष्य के शरीर में भी हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इसी तरह के भंडारों से बना हुआ है और ब्रह्माण्डों के कुल भंडारों का अधिष्टाता विराट पुरुष कहलाता है। इसी प्रकार शरीरिक भंडारों का अधिष्ठाता विभु है जो विराट पुरुष का प्रतिबिम्बत रूप है। हजारों भंडार तुम्हारे शरीर के स्थान स्थान पर विद्यमान हैं। चोटी से लेकर ऐड़ी तक उसका क्रम फैला हुआ है। कोई स्थान उससे खाली नहीं है और उनकी धारें अपने अवसर पर निकल कर अपना कार्य करती हैं। जैसे जिस समय विद्या बुद्धि

की बातें सोचते हो मन की धारणा जाने या अनजाने बृहस्पति मंडल को जाकर स्पर्श कर लेती हैं और वहाँ से एक प्रकार की बुद्धिमता की धार को साथ लेकर काम करती है।

बात कठिनता से समझ में आती है क्योंकि हम क्रियात्मक रूप से उसको करके दिखा नहीं सकते। केवल अनुभव से समझी जाती है। एक दुर्बल मनुष्य से भारी पत्थर को उठाने को कहा गया। उसे पत्थर भारी ज्ञात हुआ मगर लोगों के कहने सुनने और अपनी लज्जा के कारण उसने हट की। उसके मन की धार ने मंगल के मंडल को स्पर्श किया। वहां से विशेष प्रकार की धार निकली। मन से होकर हाथों में आई और देखते देखते उसने भारी पत्थर को उठाकर फेंक दिया। इसी प्रकार हर काम के अभ्यास के क्रम में उन उन स्थानों से धार उतरी जो उनसे सम्बन्धित थे। मनुष्य के मनबुद्धि में विशेष विशेष प्रकार के भंडार हैं जहाँ से उनकी शक्तियों की धारें उतर कर शरीर में पहुँचती हुई कार्य करती हैं। इसीलिये रचना में भंडार हर जगह दृष्टिगोचर होते हैं।

यदि रचना में प्रत्येक वस्तु के भंडार का होना सम्भव है तो अध्यात्म के असली भंडार का होना भी सम्भव है। इसका होना भी आवश्यक है। यही सारी रचना का रहस्य है और दूसरे सब उसी के आधार पर हैं। जिस प्रकार हमारे शरीर में नीचे के कुल चक्र जैसे कंठ चक्र, हृदय चक्र, नाभि चक्र आदि विशेष विशेष शक्तियों के भंडार होते हुये हमारे मस्तिष्क के भंडार से असली शक्ति प्राप्त करते हैं वैसे ही समस्त ब्रह्माड के अनन्त लोक आदि उनके कारण जीवन की गति प्राप्त करते रहते हैं और वहां से धार निकलकर सब में फैली हुई है।

यदि इस आध्यात्मिक या सुरत के भंडार का रचना में होना कहीं सम्भव है तो वह बिना मिलौनी के सुख का भंडार होगा।

यदि सुरत लौटकर उससे मिलकर एक हो रहे तो सदा के लिये दुखों से बच जायगी और उसे जन्म मरण का खटका न रहेगा। संत इसी भंडार को राधास्वामी धाम या राधास्वामी पद कहते हैं।

तेरहवाँ सन्देश

सुख की खोज बाहर नहीं किन्तु अपने अन्तर में करनी चाहिये

जिस असली आध्यात्मिक भंडार का पहिले वर्णन हुआ है वह सुरत का इष्ट पद है। वही संतों का विश्राम पद है। वहां दुख नाम मात्र को भी नहीं है। यदि वास्तव में है तो इससे यह परिणाम निकलता है कि मन और माया के मण्डल से परे होगा। वहाँ इनकी मिलौनी न होगी क्योंकि दुख वहाँ ही होता है जहाँ मन और माया की मिलौनी है। यदि सुरत उनके ढकने वाले खोलों को फेंककर उनसे सम्बन्ध तोड़कर उस निर्मल स्थान में पहुँच जाय जो आत्मिक है और केवल आनन्द है तो फिर वह सदा के लिये सुखी हो जायगी। नीचे के मण्डलों में वह माया और मन के प्रभावों के आधीन है। वहाँ उसको कोई सम्बन्ध न होगा। इस ओर माया या माद्दा हैं उस ओर आत्मा है। बीच में मन है। मन एक प्रकार का पुल है जो आत्मा और माया के बीच रोक है। पुल के पार चले जाओ और आत्मा के लोक में पहुँच जाओगे।

क्या यह लोक हमसे दूर है ? हां और नहीं। जो कुछ ऊपर

कहा गया है इससे स्पष्ट है कि वह ब्रह्माण्ड से भी परे होगा क्योंकि ब्रह्माण्ड स्वयं मन और माया की मिलौनी से प्रगट हुआ है। इस दृष्टि से यदि हम ब्रह्माण्ड को फांद कर उसके परे जाना चाहेंगे तो यह चढ़ाई अत्यन्त कठिन होगी। कौन जाने वह मिल भी सकेगा या नहीं मगर संतों ने कहा है कि वह तुम्हारे अन्दर भी है, यदि अपने अन्दर रास्ता खोज करके चढ़ाई की जायगी तो उस समय पहुँच सकोगे। फिर भी काम इतना सुगम नहीं हैं जितना तुम समझते हो। तुमको हर प्रकार की रुकावट और बाधाओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करना पड़ेगा और जब किले पर दृढ़ता के साथ आक्रमण करोगे तब कहीं उस तक पहुँचोगे। सावधानी से काम लेना होगा। शत्रु की सेना का संघार करना होगा। साहस, वीरता धैर्य और दृढ़ता से कुछ दिनों लड़ते हुये किले पर विजय होगी। इस पर विजय पाकर आत्मिक लोक में पहुँच सकोगे। जहां तुम इस समय रहते हो, वह मन माया का राज्य है। इसकी सीमा के बाद आत्मा की शुद्ध सीमा आती है। यदि इसकी लालसा है तो साहसी बनो। डरपोक इसको विजय नहीं कर सकते। पग जब पड़े आगे की ओर पड़े, न दायें न बायें। न दायें बायें देखो, न पीछे फिर कर देखो। अग्नि और जल की वर्षा में होते हुये साहस के साथ चले चलो। एक दिन वह तुम्हारा अपना हो जायगा।

यह आत्मिक राज्य तुम्हारे अन्दर है और अपने ही अन्दर उसकी खोज होनी चाहिये।

संतों का कहना है कि शरीर ब्रह्माण्ड का छोटा नमूना हैं। यह स्वयं छोटा ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड बड़ा लोक है, पिंड छोटा लोक है। इसमें केवल ब्रह्माण्ड के मन और माया के मण्डलों के प्रतिबिम्बत रूप ही नहीं हैं किन्तु इसमें सुरत के भन्डार का तत्व भी है। जिस तरह कोई लेखक किसी बड़े ग्रंथ के अर्थ और घटनाओं को लेकर उनको सूक्ष्म रूप में एक छोटी सी पुस्तक में लिख देता है, वैसे ही

ब्रह्माण्ड बड़ी पुस्तक है। और पिंड छोटी पुस्तक है। समस्त ग्रह, तारागण जो उसमें हैं वही इसमें भी है। जो व्यक्ति ब्रह्माण्ड का अध्ययन करना चाहे वह अपने आपका और अपने शरीर का अध्ययन करले। ब्रह्माण्ड का महत्व और उसकी समस्त शक्तियों का भेद मिल जायगा। रचना की कुल हालतें-स्थूल, सूक्ष्म और कारण इसमें पाई जाती हैं। स्थावर जंगम जीवन तक के सब नक्शे इसमें हैं। मनुष्य यह सब कुछ है और उनसे कुछ अधिक भी है। इसमें उच्चकोटि का अध्यात्म है और इस विशेषता के होने से देवता फरिश्ते और दिव्य वस्तुओं से भी बढ़ चढ़ कर है। कोई सम्प्रदाय ऐसा नहीं है जो मनुष्य चोला को सर्व श्रेष्ठ न बताता हो। जब तक वह वासनाओं के बन्धन से जकड़ा है तब तक दुर्बल दिखाई देता है। मगर जहाँ उसकी दृष्टि ऊंची हुई और वह अपना महत्व समझने लगा। वह एक भिन्न जीव हो जाता है। इसमें उन्नति की समस्त श्रेणियाँ सुषुप्ति की दशा में दबी पड़ी रहती हैं मगर जहाँ वह अपने आपको सोचने लगता है यह सब उभर खड़ी होती हैं। यह कुछ का कुछ हो जाता है।

स्थावर जगत उसको सुषुप्त अवस्था के समान है। स्थावर जीवन बिल्कुल स्थूल जड़ जीवन है। यह न समझो जड़पना निर्जीव अस्तित्व हैं। वह भी जीवित जीव हैं। हाँ उनका जीवन एक प्रकार का घोर सुषुप्ति का जीवन है। वह बढ़ते, घटते, बनते, बिगड़ते, खाते, पीते रहते हैं। सोखने, अपने में मिलाने और पैबन्द कर लेने की शक्ति उनमें भी है। जहाँ यह सब कानून काम करते हैं वहाँ जीवन के अभाव का कैसे अनुभव हो सकता है। यहाँ एक कण भी ऐसा नहीं है जो जीवन रहित हो। पुरुष और प्रकृति का खेल कण कण में है। इनमें आध्यात्मिकता या चेतनता अत्यन्त कम है मगर इसके होने से कैसे इन्कार किया जा सकता है।

बनास्पति वर्ग में सुषुप्ति और निद्रा दो दशायें हैं। वृक्षों में

जो दशा है वह विशेष तरह की है जैसी कि स्वप्न में घूमने फिरने वाले मनुष्यों में देखी जाती है। मनुष्य नींद में है मगर चलता फिरता दिखाई देता है। आंख के बन्द होते हुए भी काम करता है। वृक्ष भी ऐसा करते हैं। इन दोनों दशाओं में रहते हुए पौधे आदि उगते बढ़ते और फल फूल लाते हैं। स्थूल पदार्थ में प्रत्यक्ष बोध शक्ति दिखाई नहीं पड़ती मगर वृक्षों में विद्यमान हैं। कुछ पौधे तो ऐसे होते हैं कि वह कभी मनुष्य की तरह अपनी चेतन्य बुद्धि का दृश्य दिखाते हैं। इनमें से लाजवन्ती का पौधा एक उदाहरण है जो मनुष्य या पशु की छाया से घबरा कर अपने पत्ते और टहनियों को समेट लेता है और छाया से दूर होते ही फिर अपनी असली दशा में आजाता है। किसी ने छुआ नहीं कि वह मुर्दे का रूप बनी नहीं। ऐसे वृक्ष जिनमें बोध करने वाली शक्ति दिखाई पड़ती है एक दो नहीं किन्तु कई एक हैं। ग्रहण और त्याग शक्ति तो इनमें साधारण हैं। कुछ ऐसे सुने गये हैं कि अपनी चुम्बकीय प्रभाव से छोटे छोटे पक्षियों को अपनी ओर खेंचकर उनके रक्त व मास को चूस कर अपने तना में मिला लेते हैं और ठठरी को अलग फेंक देते हैं। उनको भी दुख सुख का भान होता है, चाहे वह लय अवस्था हमारी समझ में उच्चकोटिकी न हो। कमल का फूल सूर्य डूबते ही अपनी पंखडियाँ समेट लेता है। कुमुदनी की चन्द्रमा के डूबने पर यही दशा होती हैं। एक धूप में और दूसरी चाँदनी में खुश हैं। कुछ वृक्ष ऐसे हैं कि यदि तुम उन पर थूक दो तो वह जल जायेंगे। इससे प्रगट है कि वृक्ष निर्जीव नहीं हैं। वह भी कई दशाओं में रोगी होते हैं और दवा के इच्छुक रहते हैं।

अब पशुओं की दशालो। पशुओं में तीन दशायें हैं:—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। जब वह जागते हैं उनकी आँखें खुलती हैं। जब वह सोते हैं उनकी आखें बन्द हो जाती हैं। उनका कार्य जाग्रत में होता है।

मनुष्य सम्पूर्ण जीवों में श्रेष्ठ है। इन तीनों अवस्थाओं के अतिरिक्त उसमें एक विशेष प्रकार की दिव्य अन्तःकरण की अवस्था सुषुप्ति में पड़ी रहती है जो उन्नत किये जाने पर आत्मिक मंडल में इसको सफलीभूत होने का अवसर देती है। यों भी मनुष्य में विद्वता, बुद्धिमता और बोधन शक्तियाँ समस्त जीवों से अधिक विकसित होती हैं।

पृथ्वी और आकाश के जीवनों की जितनी विशेषतायें हैं वह वह सब मनुष्य में विद्यमान हैं। कुल तत्व अपने स्थूल और सूक्ष्म रूप में इसमें मौजूद हैं। जीवन के उभार में सब श्रेणियाँ अद्भुत रीति से काम करती हैं। वह पशु भी है और वृक्ष से भी समता की जा सकती है! कोई उसे उल्टा वृक्ष भी कहते हैं जिसकी जड़ ऊपर की ओर है और पत्ते और टहनियाँ नीचे की ओर हैं।

समस्त धार्मिक ग्रन्थों में लिखा हुआ है कि मनुष्य ईश्वर के रूप में बनाया है। जो जो गुण उसमें हैं सब प्रतिबिम्बित और प्रकाशवान रूप में इसमें हैं इसलिये कुल बीच की श्रेणियों के प्रतिबिम्ब उसमें उसी तरह हैं। सुख का असली भंडार भी इसमें है। उसका ज्ञात करना और ज्ञात करके प्राप्त करना मनुष्य का काम है।

—:०:—

चौदहवाँ प्रकरण

पिंड ब्रह्माण्ड की समानता और तीन बड़े लोक

मनुष्य की श्रेष्ठता के विषय में बहुत कुछ कहा गया किन्तु अभी तक यह नहीं बताया गया कि इसको अपने अन्दर किस जगह सुख की खोज करनी चाहिये।

संतों की शिक्षा के अनुसार रचना के तीन बड़े देश हैं। उनमें

सबसे ऊंचा और सबसे बड़ा आध्यात्मिक देश या मंडल है जिसमें सिवाय आत्मा के और कोई वस्तु नहीं है। न वहाँ मन है न माया है। यह केवल आत्मा का स्थान है। यहाँ रचना नहीं है। आत्मा अपनी असली दशा में है यद्यपि दशा का शब्द प्रयोग करते हुये मन कतराता है, क्योंकि इसमें वास्तव में कोई दशा नहीं है। दशा का विचार भी मन और माया के क्षेत्र में हुआ करता है। इसको दयाल देश कहते हैं। यही इष्ट पद है, आदर्श है।

दूसरा बड़ा देश ब्रह्माण्ड है जो काल देश कहलाता है और वह ब्रह्माण्ड के मन का स्थान है। यह अत्यन्त सूक्ष्म है। यहाँ यद्यपि सुरत का राज्य है और सारा काम उसी के आधीन है मगर यहाँ माया भी है और वह माया अत्यन्त सूक्ष्म है और यह सूक्ष्म माया ब्रह्माण्डीय मन की धारें मिलकर के विभिन्न रूपों में काम कर रही हैं। यह स्थान निस्सन्देह प्रलय की अवस्था में अलोप हो जाता है लेकिन चूंकि आत्मा के अधिक निकट है वहाँ इतना शीघ्र परिवर्तन व जन्म मरण नहीं हुआ करते और ब्रह्माण्ड के जीव अपेक्षा कृत अधिक सुखी रहते हैं यद्यपि वह सुख भी दुख की मिलौनी से रहित नहीं है।

तीसरा बड़ा देश 'माया देश' कहलाता है, जहाँ माया ने स्थूल रूप धारण किया हुआ है। आत्मा तो यहाँ भी सूक्ष्म है मगर वह मन और माया के आवरणों से ढ़की हुई है और असमर्थता की दशा में पड़ी हुई है। वह यहाँ मन और माया के इतनी आधीन है कि उनके बिना उसका कोई काम नहीं होता और न वह उनको दबा सकती है। उनके सम्पर्क के कारण वह तरह तरह के स्थूल और कल्पनाओं की सूक्ष्म जंजीर से जकड़ी हुई है और दुख उठाती रहती है और जन्म मरण का हर समय खटका लगा रहता हैं इसलिये इसको दुखी होना अनिवार्य है।

दयाल देश में काल और माया नहीं है। वहाँ केवल आत्मा

का राज्य है। काल देश में काल प्रबल है और माया उसकी साथी है। माया देश में माया का जोर है। उसने आत्मा अर्थात सुरत को इस तरह दबोच रक्खा है कि वह अपने आपको उनसे अलग नहीं समझती। इन तीनों स्थानों का नियमित विभाजन इस प्रकार है:—

(१) आत्मिक देश
(२) आत्मिक तथा स्थूल देश
(३) स्थूल देश

इतना समझ लेने पर उनकी असलियत और असली मन्तव्य की समझ आ सकती है। अब हम अपने शरीर में इन तीनों स्थानों का पता देते है। मनुष्य का शरीर भी इसी तरह तीन भागों में बाँटा जा सकता है:—

(१) सुरत—व्यक्तिगत आत्मा
(२) मन—जो अन्तः करण चतुष्टय से बना है।
(३) देह—तत्वों आर कर्म व ज्ञानेन्द्रियों का संगठित रूप।

मानव शरीर के तीन रूप हैं—कारण, सूक्ष्म और स्थूल। कारण उच्चतम है। सूक्ष्म, सूक्ष्म-तत्व है और स्थूल-मांस पिंजर, आदि का स्थूल ढांचा। है।

जाग्रत अवस्था में आत्मा की बैठक स्थूल शरीर में दोनों भौंओं के अन्दर है और यहां रह कर दुख सुख भोगती है जो उसके अपने ध्यान की धार को किसी जगह जमाने और हटाने से होता है। सूक्ष्म शरीर स्वप्नावस्था में कल्पित रूप और कल्पित सामान के साथ खेलता है। इस दशा में इसकी बैठक 'हता' नामी एक नाड़ी में रहती है जो हृदय से मिली हुई है। जब सुरत किसी हर्षदायक विचार या कल्पित रूप से सम्बन्ध करती है तो प्रसन्न होती है। जब उससे हटाई जाती है दुखी होती है। जब कोई दुखदाई घटना होती है वह सुरत की धार को चोट पहुँचाती है और वह परेशान

हो जाती है, कारण कि शरीर की बैठक स्वयं सुरत या आत्मा में है इसलिये इसको दुख सुख नहीं होता।

स्थूल शरीर में दस इन्द्रियां हैं - पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां। आंख, कान नाक जिभ्या (रसनेन्द्रिय) और चर्म ज्ञानेन्द्रिया हैं। हाथ, पांव, लिंग, गुदा, और जिभ्या (बाणी) कर्मेन्द्रिया हैं।

हृदय क्षेत्र में चार सूक्ष्म इन्द्रियां है जो अन्तःकरण कहलाती हैं। यह हैं -मन, बुद्धि, चित और अहंकार। मन सोचता है, बुद्धि निश्चय कराती है या साक्षात्कार कराती है, चित्त चिन्तन करता है और अहंकार दृढ़ करता है। यह चारों सूक्ष्म शरीर हैं जो सूक्ष्म तत्व शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और सूक्ष्म इन्द्रियों से बना है। यह ध्यान रहे कि सूक्ष्म तत्वों से और स्थूल शरीर स्थूल तत्वों से बना है। स्थूल तत्व यह हैं :—आकाश वायु, अग्नि, जल पृथ्वी।

अब रह गया कारण शरीर, वह वास्तव में इन दोनों शरीरों की जड़ हैं और इस का पता सुरत की धार के नीचे की ओर उतार में या उतार के मिलान में लगता है। उसका दृश्य केवल सुषुप्ति तक सीमित है। यह ऊंचे लोक में पहुँचने के बीच एक नाम मात्र को रुकावट है यदि इसको छोड़ दिया जाय तो पिंड और ब्रह्माण्ड की समानता ठीक ठीक दिखाई जा सकती है। यह केवल 'सुरत शब्द योग' के अभ्यास द्वारा जीती जा सकती है और सुरत उस पर आधिपत्य पाकर तब आनन्द और सुख के असली भंडार में पहुंचती है।

कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीर एक दूसरे से ऐसे अलग नहीं हैं जैसा कि लोग प्रायः समझा करते हैं। वह सुरत के स्थूल अभिव्यक्ति की जंजीर है, जिसमें तीन भिन्न भिन्न कड़ियां हैं। स्थूल शरीर वास्तव में सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होता है और मरते समय वैसे ही उतार कर फेंक दिया जाता है जैसे नहाते समय हम

मैल की ऊपरी तह को दूर करते रहते है अथवा फटे पुराने वस्त्र उतार देते हैं। सांप कुछ वर्षों के बाद अपनी केंचुली उतारता है। कारण और सूक्ष्म शरीर बराबर स्थित रहते है और नये जन्म के समय जो धारें कारण और सूक्ष्म शरीर से निकलती हैं वह घनी होकर स्थूल शरीर उत्पन्न कर लेती हैं और वह स्थूल शरीर इस तरह का होता है जो हमारे पृथ्वी लोक के ठहराव की आवश्यक्ताओं के अनुकूल हो। सूक्ष्म और कारण उस समय तक बने रहते हैं जब तक सुरत लौट कर अपने भंडार को नहीं जाती।

ब्रह्माण्ड और पिंड की समानता दिखाई दी गई। यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार पिंड और ब्रह्मांड दोनों के स्थूल और सूक्ष्म आवरण उतारता हुआ ऊपर की ओर चढ़े और सुरत के भंडार में पहुंच जाय तो फिर वह सुखी होकर जन्म मरण से रहित हो जायेगा।

सत पद का साक्षात्कार स्थूल इन्द्रियों द्वारा कठिन बात है। तुमको अपने आप को इससे अलग करना होगा। इनसे गहरा सम्बन्ध ही तो अज्ञान का कारण है। इनसे इसी तरह निकलना है जैसे सरकंडे को चीर कर उसके बीच से तेली निकाल ली जाती है। जब इस प्रकार अलग हो जाओगे तब जंजीर की कड़िया टूट जायेंगी। यदि उनको तोड़ना है तो आज ही से प्रत्येक वस्तु को असल रूप में देखना शुरू करो। मन को स्थूल और शरीर के मण्डल से ऊंचा लाओ। मानव बुद्धि को आत्मिक बुद्धि से बदलने का प्रयत्न करो। इससे तुम को बड़ा लाभ होगा।

—:०:—

पन्द्रहवां सन्देश

तीन बड़े लोकों के छः भाग

ऊपर जिन तीन बड़े बड़े लोकों का वर्णन आया है उनमें से हर एक के छः छः भाग है। प्राकृतिक व्यवस्था में इन छःओं में से हर एक विशेष प्रकार का कार्य करता है। जिस तरह संतों ने उनकी व्याख्या की है उसका समझाना सुगम नहीं है। हां यदि पिंड देश के छः क्रमानुसार भागों को समझ लिया जाय तो इतना हो सकता है कि ब्रह्मांड के भागों को भी समझा जा सकेगा और आत्मिक लोकों का भी अनुमान किया जा सकेगा।

सबसे पहिले हम माया देश को लेते हैं जिससे हमारा अभिप्राय अपने शरीर से है। यह बात कई बार कही जा चुकी है कि पिंड ब्रह्माण्ड की नकल है। इस लिये यह आवश्यक है कि जो उसमें होगा वही इसमें भी होगा। मानव शरीर ६ भागों में विभाजित है, इनको योग की परिभाषा में चक्र या कँवल कहते हैं। यह वास्तव में कँवल या चक्र नहीं हैं किन्तु नस नाड़ियों के गोले हैं जो एक स्थान पर रह कर अपनी धार नीचे की ओर फेंकते हैं।

इनमें से पहिला चक्र दोनों भाओं के बीच और नाक से तनिक ऊपर है। यह व्यक्तिगत सुरत की बैठक है जिस से नीचे के पांच चक्रों को शक्ति मिलती है, इसको 'तीसरा तिल','शिव नेत्र','ज्ञाननेत्र' 'आत्म नेत्र' आदि भी कहते है। सूफी इसी को 'नुक्तये सुवेदा' कहते है। यह शरीर का मुख्य (सदर) स्थान है।

दूसरा कँवल कंठ चक्र है जो शरीर में आकाश तत्व के ब्रह्मांडीय मंडल का प्रतिबिम्ब है और सांस को नियमित रूप से चलाने वाला है। यह कंठ में है।

तीसरा हृदय चक्र है। यह ब्रह्मांड के वायु मंडल की नकल है। यह वायु का स्थान है और इससे नीचे के तीन स्थानों को

मिलती है। यहां वायु के पंखे हैं जिनसे वह बराबर निकलती रती है।

चौथा चक्र नाभि कँवल है जो इस शरीर में ब्रह्मांड के अग्नि मंडल का अक्स या नकल है। यहां जो अग्नि रहती है वह जठराग्नि कहलाती है। जो इस स्थान पर रह कर कुल शरीर को गर्मी देती रहती है। यही भोजन को पचा कर ऐड़ी से चोटी तक पहुंचाया करती है।

पाँचवाँ इन्द्रिय चक्र (लिंग इन्द्रिय) है जो ब्रह्मांड के जल मंडल की नकल है। जल ही वास्तव में जीवन की रचना में सबसे प्रथम है। इसी से विभिन्न रूप उत्पन्न होकर दिखाई आते हैं। एक को अनेकों में बांटने का यंत्र है

छटवाँ और अन्तम चक्र गुदा कँवल है जो ब्रह्मांड के पृथ्वी मंडल का इस स्थूल शरीर में स्थान हैं। यह मिट्टी की तलछट को जो शरीर में लय होने योग्य नहीं है बाहर करता रहता है।

यह छः चक्र जैसे हमारे शरीर में हैं वसे ही नीचे के मँडल में हैं। वहाँ वह महास्थूल हैं। रचना नीचे के मंडल में भी है मगर इसमें आत्मिकता (चेतन्यता) इतनी कम है जिसको लगभग जड़ का स्थूल रूप कहा जा सकता है।

इन छः चक्रों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये ताकि इनकी सहायता से प्राकृतिक व्यवस्था के उतार चढ़ाव का रहस्य समझ में आ सके क्योंकि इनके सिलसिले में स्थूल तत्वों के पैदा होने का भेद ज्ञात हो जायगा और यह सुगमता से समझा जा सकेगा कि इनकी हमारे असली स्वरूप 'सुरत' से क्या सम्बन्ध हैं और हम यह हैं या केवल सुरत हैं।

हर एक स्थान में चार बातें हैं:—(१) मंडल (२) रूप (३) धनी (४) नाम ! मंडल तत्वों के भंडार के रहने का स्थान है।

जिस रूप में वह एक स्थान पर स्थित हो गई हैं वही उसका रू
जो उसकी शक्ति उनमें रहकर इनको नियमित रूप से चलाती है
इस शरीर की है और जिसको वह नहीं जानती वह उसका धनी अं।
अधिष्ठाता है। और इस धनी का नाम होता है और उस नाम की सहायता से उसकी समझ आती है। यह धनी अपने मंडल में सर्व-व्यापक होता है। इसमें भी नियमितता की शक्ति रहती है जो सुरत की अंश हैं। इसका भी विचार अध्यात्म के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिये क्योंकि चाहे वह कुछ भी न हो, वह भी सुरत की धार का एक रूप, नकल और प्रतिबिम्ब है। इसीलिये कहा गया है:—

जो आँख में है, आँख जिसको नहीं जानतीं, आंख जिसका शरीर है, जो आँख में रहकर आंख को नियम में चलाता है वही तेरा अविनाशी आत्मा और अमृत है।

जो वायु में है, जिसको वायु नहीं जानता, वायु जिसका शरीर है और जो वायु में रहकर वायु को नियम में चलाता है वह तेरा अविनाशी आत्मा और अमृत है।

जो अग्नि में रहता है, अग्नि जिसको नहीं जानती, जो अग्नि का शरीर है और जो अग्नि में रहकर अग्नि को नियम में चलाता है वही तेरा अविनाशी आत्मा और अमृत है।

जो जल में रहता है, जल जिसको नहीं जानता, जल जिसका शरीर है, जो जल में रहकर जल को नियम में चलाता है वही तेरा अविनाशी आत्मा और अमृत है।

जो पृथ्वी में रहता है, पृथ्वी जिसको नहीं जानती, पृथ्वी जिसका शरीर है, जो पृथ्वी में रहकर पृथ्वी को नियम में चलाता है वही तेरा अविनाशी आत्मा और अमृत है।

जो आकाश में रहता है, जिसको आकाश नहीं जानता, आकाश जिसका शरीर है, जो आकाश में रहकर आकाश को नियम में चलाता

तेरा अविनाशी आत्मा और अमृत है, आदि आदि।

(वृहदारण्यक उपनिषद)

इससे प्रगट है कि कोई तत्व सुरत के बिना रह नहीं सकता है। सुरत ही परम तत्व है और सब उसके आधार पर हैं।

नीचे हम नक्शे के रूप में इनकी मद (विभाग) स्थित किये देते हैं ताकि समझने में सुगमता हो।

क्रम सं०	नाम	रहने का स्थान	तत्व	धनी	तसव्वुफ की श्रेणियां	विवरण
१	तीसरा तिल	दोनों भौओं के बीच	व्यक्ति गत सुरत	आत्मा	आलमे मलकूत	नुक्तय सुवेदा, ज्ञाननेत्र आदि भी नाम हैं।
२	कंठ चक्र	गला	आकाश	दुर्गा	——	सहस दल कंवल
३	हृदय चक्र	हृदय	वायु	शिव	——	१२ दल का कंवल
४	नाभि चक्र	नाभि	अग्नि	विष्णु	आलमे मलकूत	८ दल का कंवल
५	इन्द्रिय चक्र	लिंग इन्द्रिय	जल	ब्रह्मा	——	६ दल का कंवल
६	गुदा	गुदा	पृथ्वी	गणेश	——	४ दल का कंवल

लोगों को यह भ्रम होगा कि यह षट चक्र कल्पित हैं मगर यह याद रहे कि यह कल्पित नहीं है किन्तु इनकी असलियत है। कुछ लोग यह भी समझेंगे कि यह एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं। यह बात भी नहीं है। वह मिले जुले हैं। एक जंजीर की भिन्न भिन्न कड़ियाँ हैं और नीचे की कड़ी ऊपर की कड़ी से वैसे ही

सम्बन्धित हैं जैसे आँकड़े से किसी ने एक दूसरे के साथ बाँध हैं। इनमें से हर एक के दो रूप हैं। एक धनात्मक दूसरा ऋणात्मक यह क्यों है ? क्योंकि इनमें हर एक पुरुष और प्रकृति के रूप और प्रतिबिम्ब हैं। जब आकाश की धनात्मक और ऋणात्मक धारें सुरत की सहायता से मथने लगीं, इनका असली तत्व तो आकाश मंडल में रह गया और अक्सी धारें नीचे को उतर कर वायु के रूप में स्थित होकर हृदय चक्र में ठहरीं। अब वायु तत्व की दोनों धारें मथ ने पर शुद्ध रूप में वह हृदय चक्र में रहीं और प्रतिबिम्बत धार नीचे उतर कर अग्नि के रूप में नाभि चक्र में आई। अग्नि की धारें जब मथी गईं शुद्ध तत्व तो नाभि चक्र में रह गया और प्रतिबिम्बत धार जल के रूप में प्रगट होकर इन्द्रिय के स्थान पर ठहरी। इसी तरह पृथ्वी उत्पन्न हुई। पृथ्वी का असली तत्व तो सृष्टि के रूप बनाने में काम आया जो तलछट थी वह गुदा चक्र में आकर निकल गई क्योंकि वह सृष्टि के काम की नहीं थी और भी इसी प्रकार।

इसी तरह नीचे की रचना में भी काम होता है। मगर वह छोड़ दिये जाते हैं। दृष्टि को एक जगह लगाकर असलियत का पता लगाना है। इसी तरह ऊपर की श्रेणियों के बारे में भी सोचना चाहिये। अभिप्राय यह है कि यह तत्व इसी तरह एक दूसरे से मिले जुले हैं।

अब एक बात और भी बता देनी हैं। आकाश अपने मंडल में तो शुद्ध और सूक्ष्म रूप में है, नीचे के स्थानों में वायु, अग्नि; जल, पृथ्वी इसी के प्रतिविम्बित और स्थूल रूप हैं। इसलिये असलियत की दृष्टि से यह सब भी आकाश ही हैं और आकाश तत्व सबमें व्यापक हैं।

प्रश्न कर्त्ता शायद यह पूछें कि सुरत से आकाश कैसे पैदा हुआ। सुरत से भी इसी तरह दो धारें धनात्मक व ऋणात्मक रूप में निकली थीं। एक को उनमें से 'रई' और दूसरी को 'प्राण' कहते हैं।

र प्राण के मथन से आकाश की उत्पत्ति होती है। शुद्ध सुरत तीसरे तिल में है। आकाश उसके नीचे है। जो लोग आकाश को शून्य स्थान समझ बैठे हैं उनको इसके तत्व होने की भी समझ नहीं आती। वह इस विषय को कैसे ग्रहण कर सकेंगे! इसलिये जब तक चित्त से यह विचार दूर न हो तब तक उनको समझाना व्यर्थ है।

अभिप्राय यह कि यदि सचाई की दृष्टि से देखा जाय तो स्थूल और सूक्ष्म दशाओं से गुजरते हुये दृष्टि असलियत पर ठहरेगी और यदि शब्दों के गोरख धंधे में फंसे तो असलियत का समझना कठिन होगा। इन तत्वों के अनेक रूप हैं। केवल जल तत्व को देखो। बर्फ, जल, भाप उसी से हैं और उसी के हैं मगर तुम भाप को जल न कह सकोगे, न बर्फ को क्योंकि उनके रूप पृथक पृथक हैं। कुल स्थूल तत्वों की यही दशा है। जैसे आकाश सब तत्वों में व्याप्त है वैसे ही सुरत हर जगह व हर वस्तु में व्याप्त है। यह षट चक्रों की व्याख्या है। इससे अधिक न हम कह सकते हैं और न कहना चाहिये।

—:०:—

सोलहवाँ सन्देश

ब्रह्माण्ड के छः भाग

यह नियम सर्वत्र है कि जो कुछ विचार मनुष्य के मन में होते हैं उन सब का प्रतिबिम्ब इसके चहरे में आ जाता है और उसके माथे को सलवटें और झुर्रियाँ उनको प्रगट किये बिना नहीं रह सकतीं। जो व्यक्ति जिस प्रकार के विचार करेगा उसकी शकल वैसी ही बनेगी। जब लगातार एक तरह का विचार चित्त पर जम जायगा तो वह

सामान की मौजूदगी से

चेहरे को अपना दर्पण बनाकर उसके अंग ...ड़ता है और करेगा। मुखाकृति ज्ञाता उनकी सहायता से उसके ...चना पर सकेंगे। मनुष्य की शकल एक तरह की खुली हुई पुस्त... स्पष्ट शब्दों में उसके भावों की असलियत का वर्णन रहता ह... तुम से हो सके तो तुम किसी से उसका हाल न पूछो। उसके च... का अध्ययन करो। स्वयं ही सुगमता से उसका पता पा सकोगे क्योंकि मानसिक भाव अपना प्रभाव और अपने चिन्ह मनुष्य की सूरत पर छोड़ते रहते हैं। भाव जितना घना होगा उतना ही उसका प्रतिबिम्बत रूप खुला होगा और उतना ही उसके मन की दशा का पता मिल सकेगा। जो इस नियम को जानते हैं, वह केवल मनुष्य की दृष्टि और उसका माथा देखकर पता पा लेते हैं कि यह किस तरह का और किस विचार का जीव है। जो इसको नहीं जानते उनसे बाद विवाद करना व्यर्थ है। वह न समझेंगे और न बात उनकी समझ में आयेगी।

भावों का असली प्रतिबिम्बित रूप चेहरे पर स्थायी रूप से स्थित हो जाता है। केवल इतना ही नहीं है किन्तु वह उत्पत्ति के नियमानुसार बाप से बेटे और बेटे से पोते तक क्रमशः जाते रहते हैं। एक विशेष प्रकार के आदमी क्यों दूसरी जाति के आदमियों से भिन्न हैं? क्योंकि उनका पुरुखा विशेष विचार वाला था। एक जाति का पशु क्यों उसी तरह के बच्चे पैदा करता है? क्योंकि यहाँ भी वही विचार का नियम अपना काम करता है। उत्तराधिकार का नियम अपने पर्दे में भलाई बुराई, रोग, स्वास्थ्य, विशेष प्रकार की आदतें, सम्पर्क और गुणों का विकास करता है। तुम क्या हो? तुम्हारा जन्म केवल विशेष प्रकार का है क्योंकि तुम्हारे भावों ने तुमको ऐसा ही रूप दे रक्खा है। विचारों का वेग अपने प्रगट करने का सामान साथ लाता है।

क्रम सं०	नाम	स्थान
१	राधास्वामी	
२		

का अंडा है। ब्रह्म क्या है? ब्रह्मांड नहीं है। जैसा ब्रह्मांडीय मन है वैसा ही रूप में तुम्हारा पिंडी मन भी है। इसकी उस है। जो सम्बन्ध पिंडी अर्थात शारीरिक मन का के साथ है वही सम्बन्ध ब्रह्म अर्थात ब्रह्मांडीय मन का के साथ है। जिस तरह तुम्हारे अपने विचार तुम्हारे चेहरे प्रगट होते हैं वैसे ही ब्रह्मांडीय मन या ब्रह्म के विचार ब्रह्मांड में अपना प्रतिबिम्ब डालते हैं। जितनी श्रेणियां तुम्हारे शरीर में है वही इस ब्रह्मांड में भी अपना प्रतिबिम्ब डालती हैं। स्थूल और सूक्ष्म का अन्तर अवश्य है और अवश्य होगा मगर असलियत में अन्तर नहीं आता क्योंकि पिंड को ब्रह्मांड की नकल मान लिया गया है। जिन छः चक्रों की चर्चा मनुष्य के शरीर में आई है वह वास्तव में उन छः चक्रों के प्रतिबिम्बित नक्शे हैं जो ब्रह्मांड में विद्यमान हैं। अन्तर केवल इतना है कि ब्रह्मांड बड़ा है और यह छोटा है, जो उस में है वही इसमें है।

यह ब्रह्माँड भी इसी तरह छः भागों में विभाजित है जिस तरह हमारा शरीर विभाजित है। जिस तरह हमारे शरीर के पांच नीचे के भाग ऊपर के अन्तिम चक्र से अर्थात व्यक्तिगत सुरत से चेतन्यता, शक्ति और गति प्राप्त करते हैं, ठीक उसी तरह ब्रह्मांड की चोटी पर जो धनी रहता है, सब को शक्ति और चेतन्यता प्रदान करता है। जिस तरह हमारे शरीर में गुदा चक्र अनावश्यक तत्व को बाहर निकालता रहता है इसी तरह ब्रह्मांड के नीचे के भाग में वही काम होता रहता है। इससे यह बात समझ में आयेगी कि सुरत की दशा जो शरीर में दोनों भौओं के पीछे है वही ब्रह्मांड रूपी शरीर के ऊंचे मन्डल में हैं और वही काम वहां भी होता है।

जो लोग सुरत शब्द मार्ग के अभ्यासी नहीं हैं, जिन्होंने संतों का सत्संग नहीं किया है अथवा जो लोग निष्ठावानों के गुप्त रहस्य

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

फ़ारसी से अनजान ह
कठिन है क्योंकि उनके कान संतों के बच
जो अभ्यास कर रहे हैं उनको सरलता से समझ
वह समझ कर न केवल अपनी जानकारी बढ़ायेंगे
बिधि की जानकारी से इस मार्ग में उनकी श्रद्धा बढ़ेगी। वह
करते हुये घट में चढ़ाई करते हुये उसका अनुभव और साक्षात्
करते चलेंगे।

शरीर के हृदय चक्र, नाभि चक्र और इन्द्रिय चक्र की असली सूरत मस्तिष्क के स्थान त्रिकुटी में है। इसमें तीन विशेष प्रकार की धारें हैं। इन्हीं के कारण यह त्रिकुटी कहलाती हैं। सूफियों की परिभाषा में 'मसलसी' है और प्राचीन काल के ध्यान करने वाले मसीही इसको 'सलीब' कहते हैं। ब्रह्माँड का धनी 'महासुन्न' नामी स्थान में रहता है और वही ब्रह्माँडीय मन नीचे के मण्डल को चेतन्यता, शक्ति और गति प्रदान करता है और जो चेतन्यता ऊपर के स्थानों के योग्य नहीं है इसको हमारे गुदा चक्र की ओर गिराया करता है। दूसरा स्थान उसके नीचे सुन्न है जो हमारे कंठ चक्र के समान है। अधिक व्याख्या के विचार से उनकी समानता इस तरह पर करते है :—

ब्रह्मांड के मण्डल	शरीर के मण्डल
(१) महासुन्न	(१) तीसरा तिल
(२) सुन्न	(२) कंठ चक्र
(३,४,५) त्रिकुटी	(३) हृदय चक्र
	(४) नाभि चक्र
	(५) इन्द्रिय चक्र
(६) सहसदल कंवल	(६) गुदा चक्र

जिनको पुरुष और प्रकृति कहा जाता है उनकी अभिव्यक्ति जहार) सुन्न के स्थान से होती है। उनके प्रतिबिम्बित रूप का

...और (लिंग) इन्द्रिय
...र के अन्दर काम करते हैं। तीन रूप ब्रह्म के ह।
हम फिर स्पष्ट नक्शे में उसकी व्याख्या किये देते हैं:—

नं०	नाम	रहने का स्थान	सूक्ष्म तत्व	धनी	नसब्बुफ के स्थान	विवरण
१	महासुन्न	माथे का ऊंचा भाग	सुरत, ब्रह्माण्डी सुरत जिससे शब्द पैदा होता है	परब्रह्म	——	——
२	सुन्न	उसके नीचे	शब्द गुप्त	अक्षर	हाहूत	——
३	त्रिकुटी	उसके नीचे	स्पर्श, रूप, रस	ब्रह्म (ओउम) ब्रह्मा विष्णु महेश का मिला हुआ रूप	लाहूत	——
४						
५	सहसदल कंवल	उसक नीचे	गंध	ज्योति निरंजन	जबरूत	——
६						

इन स्थानों की भी धारें वैसे एक दूसरे के साथ क्रमानुसार हैं जैसा कि पिंड की व्याख्या में वर्णन किया गया है और उनके भी धनात्मक और ऋणात्मक रूप हैं जो अत्यन्त सूक्ष्म हैं।

अहंकार, मन, बुद्धि और चित का स्थान जैसा कि हमारा हृदय चक्र है वैसे ही ब्रह्माण्ड में ब्रह्म है जो ब्रह्माण्डी मन कहलाता है। उसकी जीवित करने वाली धारें ऊपर से आती हैं और इसमें इतनी सूक्ष्म शक्तियों की धारें मौजूद हैं जितना पता कहीं कहीं केवल संतों की वाणी से मिलता है।

—:०:—

सत्तरहवाँ प्र

आत्मिक मण्डल के छः भ.

इस मण्डल का वर्णन ब्रह्माण्ड के वर्णन से वास्तविकता यह है कि इसको कोई कैसे वर्णन करे जिसक. केवल अनुभव से हो। फिर भी जो कुछ वाणी से पता लग. प्रगट किया जाता है।

यह बुद्धि विवेक का युग कहलाता है। जो कुछ मनुष्य की जानकारी मन और पदार्थ (स्थूल) के सम्बन्ध में प्राप्त है वह बहुत कुछ करने पर भी सन्तुष्टि योग्य नहीं है। मनुष्य की दृष्टि पदार्थ पर पड़ती है और उस पर वह विचार करता है। पदार्थ या दृश्यमान जगत विचार की वस्तु हुई और मन उसका विचारने वाला ठहरा। साधारण आदमी केवल मन और माद्दा (पदार्थ) ही को सब कुछ समझता है। कुछ लोगों की दृष्टि में तो मन से ऊँची कोई वस्तु नहीं है। कोई कोई तो मन ही को आत्मा समझते है और उसके आगे बढ़ना नहीं चाहते हैं क्योंकि जब मन ही अन्तिम दृष्टि ठहरी तो आगे कोई क्या कहेगा और क्या सुनेगा और क्या विचार करेगा। वर्तमान युग में अध्यात्मवादियों का तो निर्णय ही यह है कि मन ही आत्मा है। इसके अतिरिक्त आत्मा के ज्ञान को कल्पना और भ्रम समझते हैं। संतों का विचार सदा से इसके विपरीत रहा है। चूंकि उनका बौद्धिक और आत्मिक विकास विशेष ढंग पर होता है, वह जोरदार शब्दो में कहते आये है कि आत्मा मन नहीं है। मन केवल बीच की वस्तु है। आत्मा का स्थान इससे बहुत ऊँचा है और वही सत-चित-आनन्द है और उसी तक पहुँचने से सत-चित-आनन्द मिलता है। न मानने वाले वर्ग चाहे जितना मना किया करें मगर आत्मा का अस्तित्व है। कभी न कभो उनको मानना पड़ता है कि मन के पीछे कोई ऐसी वस्तु अवश्य है जिसका ज्ञान नहीं होता।

काम करती है। इस पर तुम स्वयं सोचो। कोई दिखाई नहीं देती, जो इन तीनों क्रियाओं या दशाओं से परे हो। चौथा पद तो अभी दूर है जिसका पता संत दे गये हैं। यदि इन्हीं तीनों पर अच्छी तरह विचार किया जाय तब भी आत्मा का अस्तित्व स्वयं अपना प्रमाण सिद्ध होगा।

यदि यह प्राकृतिक शक्तियों के बारे में ठीक है तो आत्मा के विषय में क्यों ठीक न होगा। यदि तुम आत्मा के होने से मना करते हो तो फिर तुमको मन और माया के अस्तित्व से भी मना करना चाहिये क्योंकि उनमें और उनसे और उन पर आत्मा या सुरत का काम होता है।

तुम इस तरह इसको समझो। एक मण्डल आत्मा का है जो इसका असली स्थान है। दूसरा मण्डल मन का है जो आत्मा का यंत्र है। तीसरा मण्डल पदार्थ का है जिस पर आत्मा मन की सहायता से काम करती है। बिजली की शक्ति का एक भंडार है। किसी यंत्र की सहायता से इस भंडार में से धार निकलती है और यह धार एक स्थान पर आकर काम करती है। यह बात तुमको ठाक प्रतीत होती है कि नहीं ?

स्थूल मण्डल जिस प्रकार ब्रह्माँडीय मण्डल का प्रतिबिम्ब है और स्थूल मण्डल का काम जिस तरह ब्रह्माँडीय मण्डल के काम का प्रतिबिम्ब है, इसी तरह पर ब्रह्माँड भी किसी और शक्तिशाली वस्तु की प्रतिबिम्बित दशा है और वही असली वस्तु है और शेष यह सब नकल है।

जिस समय सुरत के भंडार में क्षोभ होता है उसका प्रभाव मन पर पड़ता है और फिर मन का प्रभाव पदार्थीय बाह्य रचना पर

पड़ता है। ... प्रभाव ब्रह्मांड में पड़ता है अथवा स्थूल ...लोकीय मन पर ...

एक आत्मिक मंडल है। एक ब्रह्म या ब्रह्माँड का मंडल है। तीसरा व्यक्तिगत सुरत या पिंडी देश का मंडल है। आत्मिक मंडल में भी तीन दशायें हैं जिनको आत्मिक दृष्टिकोण से दशा नहीं कहा जा सकता। ब्रह्माँडी मन्डल में भी यही तीन दशायें है। इसमें भी धनी, धनी का मन और धनी के मन के काम का स्थान है। शारीरिक मंडल में व्यक्तिगत सुरत का पिंडी मन है और पिंडी मन के काम का स्थान यह शरीर है। हर जगह एक सी दशा है जो समझने बूझने से रुचिकर प्रतीत होती है।

मानव शरीर और मानव शरीर का कार्य, ब्रह्माण्ड और ह्माण्ड के कार्य के सामने असलियत से रहित है। इसी प्रकार ात्मिक मंडल और आत्मिक मंडल के कार्य के सामने ब्रह्म और ाण्ड का कार्य तथ्यहीन है क्योंकि वास्तव में यह असीमित द्र की एक बूंद है। एक बूंद से अधिक उसकी हैसियत है। वह समुद्र ही सुरत का आदि धाम और आदि स्थान है। एक जगह बता दिया है कि रचना में हर जगह भंडार हैं ये सुरत का भी भंडार है।

जिस तरह हमने पिंड और ब्रह्माण्ड की व्याख्या शब्दों के की है वैसे ही नीचे संतों के वचनानुसार आत्मिक मंडल की ख्या करते हैं। शब्दों पर जाने की आवश्यक्ता नही है। शब्दों के मन्तव्य की ओर दृष्टि रहे तब कुछ इसकी समझ

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

... ए २५क। आभप्राय यह है कि जो ५
शक्ति को जितनी सूक्ष्म धारें उसमें काम करती हैं और
आत्मिक मंडल का प्रतिबिम्ब है इसलिये ब्रह्माँड और आ...
तक की नकल का अस्तित्व उसमें सम्भव है ।

इस पारस्परिक समानता के विषय में बहुत कुछ कहा सकता है । शरीर के मंडलों का वर्णन फिर भी बहुत कुछ स्पष्ट मगर अब तक मनुष्य के सर और उसकी बनाबट के विषय में कम लिखा गया है । आत्मिक मंडल की समानता इस के सर और दिमाग से है और उसी में आत्मिक और स्थूल मण्डलों की समानताओं का सामान मौजूद है । मनुष्य के दिमाग में बारह छिद्र या कोठरियाँ है । उनमें से छः में तो पीले रंग का पदार्थ है और छः में बिल्कुल सफेद रंग का पदार्थ है । पहिले ब्रह्माँड के छः भागों की नकलें हैं और पिछले छः आत्मिक मडलों के प्रतिबिम्बितरूप है । इनके अन्दर केवल अपनी सुरत की सहायता से सुरत एक के बाद दूसरे में प्रवेश पा-सकती है ।

वाह्य जगत में सुरत ही विचित्र खेल करती है । अन्तरीय जगत में भी इसी को पहुँचने का अधिकार प्राप्त है बशर्ते की संतों की बिधि के अनुसार ऊपर की ओर चढ़ाई की जाय ।

शरीर में जितने कँवल या चक्र हैं वह उस समय तक सुप्त दशा में पड़े रहते हैं जब तक सुरत की धार उनके साथ खेल शुरु नहीं करती । जहां इसका खेल उनके साथ शुरु हुआ, वह जोवित हो जाती हैं । इनमें गति आ जाती है । इसी प्रकार ऊपर दिमाग में जो सफेद और भूरे रंग की कोठरियां या स्थान हैं वह भी सुप्त दशा में रहते हैं । केवल सुरत को धार के आने से इनमें तेजो आती है ।

की आवश्यकता नहीं हैं। आवश्यकता
समझने की है, जिधर हम अपने पाठकों
ना चाहते हैं। यह कोठरियां इतनी महत्व
तो सुरत या आत्मा का है। जैसे जिभ्या केवल
क साधारण यंत्र है। उसमें स्वय कोई महानता
उस समय तक कुछ काम नहीं दे सकती जब तक सुरत
उस पर न आये। जब सुरत समस्त छिद्रों में पहुँच जाती है
समय वह जीवित बन जाती है और खट्टा, मीठा, कडुवा, कसैला
रपरा और नमकीन का स्वाद लेने लगती है।

जिभ्या में कितने पुर या छिद्र हैं, हम नहीं बता सकते। सम्भव है सैकड़ों हों और उन सैकड़ों में सैकड़ों विचार वाली होकर सुरत प्रवेश कर जाती है, तब वह स्वाद लेने योग्य बनती हैं। जब वह धार खिच जाती है जैसा कि बेहोशी, बीमारी और समाधि की दशा में हुआ करता है तब वही जिभ्या फिर मुर्दा गुण वाली हो जाती है। इसलिये जो कुछ महानता है वह सुरत की है इन्द्रिय निर्जीव हैं। केवल सुरत की शक्ति पाकर यह जीवित हो जाती है। और काम करने लगती हैं। यही दशा हमारे शरीर की कुल इन्द्रियों और कोठरियों की है जैसा ऊपर कहा गया है। मृत्यु के समय जब सुरत का खिचाव ऊपर की ओर होता है हाथ पाँव सब ही मर जाते हैं। इस लिये जहां कहीं देह दिमाग और सर की कोठरियों का उल्लेख आये, हमेशा ख्याल रहे कि वह स्वयं कुछ नहीं हैं। जो कुछ है वह सुरत है।

इसी प्रकार यदि सुरत का किसी विशेष स्थान पर अधिक ठहराव होगा वह स्थान उतना ही प्रकाशवान और जीवित होगा। जिस इन्द्रिय को जितना अधिक सुरत की धार को सहारा मिलता है वह उतनी ही बलवान होती है। यही कारण है कि कुछ पशुओं में देखने की शक्ति अधिक होती है, कुछ में सुनने की शक्ति अधिक होती हैं। और भी इसी तरह से हैं।

जैसे कि हम प्रतिदिन के काम काज में अपनी विशेष इन्द्रियों को अधिक सहारा देते हैं और उनको जाग्रित कर लेते हैं इसी तरह यदि सुरत का ध्यान त्रिभाग की ओर हो जिसकी सुप्त दशा में पड़ी कोठरियों जो भूरे और सफेद रंग की है, वह गतिमान हो जाँयगी और उनका खेल हमारे अन्दर शुरू होगा। हम न केवल इन से परिचित ही होंगे किन्तु उन के सुप्त गुणों का उत्तराधिकार भी हमको मिल जायगा।

अन्तिम सन्देश में हमने विभिन्न स्थानों के विभिन्न धनियों का नाम वर्णन किया है। यह कल्पित नहीं हैं किन्तु असलियत रखते हैं। उनमें विशेष प्रकार की शक्तियां और योग्यतायें हैं। यदि अभ्यासी इनका ध्यान करते हुए सुरत की धार की सहायता से इन तक पहुँच जाय और उनको अपना बनाले तो अभ्यास की सहायता से उनकी सूक्ष्मता का उत्तराधिकारी होगा। और सूक्ष्म बन जायगा जो उसके चेहरे और रंगत से प्रगट होने लगेगा।

बात का समझना इतना कठिन नहीं हैं मगर कठिनाई यह है कि लोग सचाई को ग्रहण करने से कतराते हैं। क्या तुम नहीं देखते कि सुरत की धार को शरीर के किसी भाग में एकाग्र कर देने से मनुष्य बलवान हो जाता है। सुरत की धार मन के साथ जोड़ देने से मन कुछ का कुछ बन जाता है। सुरत की धार जब बराबर बुद्धि से मिलती है तो मनुष्य बुद्धिमान हो जाता है। फिर कैसे सम्भव है कि सुरत आत्मिक कोठरियों से मिलने पर मनुष्य को आत्मिक न बना देगी और वह सुखी न होगा।

जो नाड़ी एक चक्र से दूसरे चक्र तक जाती है सुषुम्ना कहलाती है। सुरत इसी में होकर जाती है। सुरत सुषुम्ना नाड़ी से भिन्न है। वह केवल मार्ग है और उसकी सड़क से होती हुई धार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है और उस पर अधिकार पाती है। सबसे पहिले एक कोठरी पर, जो शिक्षा दीक्षा के समय बताई जाती है, सुरत की धार को समेट कर जमाओ। जिस समय चित्त में

सूक्ष्मता आयेगी स्वयं उसमें पहुँच जाओगे और सुषुम्ना नाड़ी उसका मार्ग सिद्ध होगी।

उदाहरण के रूप में यों समझो। तुम्हारे घर में एक अंधेरा कमरा है। उस कमरे में एक बहुत छोटा छेद है जिसमें से सूर्य का प्रकाश आता है। यदि तुम उस प्रकाश पर ध्यान जमाओ और उसकी तरह सूक्ष्म हो जाओ तो सूर्य की इस किरण पर सवार होकर प्रकाशवान सूर्य तक पहुँचने के योग्य हो सकोगे और उससे मिलकर एकता के नियम के अनुसार एक हो जाओगे। प्राणयोग की परिभाषा में इसको संयम कहते हैं। संयम कोई और वस्तु नहीं है मगर समझता बझता कौन है! इसी तरह यदि मनुष्य सुरत शब्द योग का अभ्यास करें तो वह एक स्थान से होता हुआ दूसरे स्थान पर पहुँचेगा और फिर उससे होकर तीसरे में आयेगा और अन्त में उस स्थान तक पहुँच जायगा जो सबका आदि और अन्त है और दुख: सुख के फंदे से सदा के लिये छूट जायगा।

कुछ लोग इस प्रकार विश्वास करते हैं कि आत्मा या सुरत स्वयं कोई वस्तु नहीं हैं किन्तु तत्वों के मेल से एक प्रकार की शक्ति में जो परिणाम प्रगट होता है वही है। कुछ इसको और कुछ समझते हैं। यह गलती पर है। आत्मा कोई वस्तु है। तत्व, प्रकृति के नियम सब अपने जीवन के लिये उसके आश्रित हैं। जब वह चली जाती है यह भी विलय हो जाते हैं। एक बड़े दाने को देखो। जब अखुये के रूप में वह बाहर आता है, प्रकृति की संपूर्ण शक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करके बड़ा वृक्ष बन जाता हैं। इस वृक्ष में सुरत की धार है मगर जब वह धार इसको छोड़ देती है, वृक्ष सूख जाता है। प्रकृति की शक्तियां फिर उसको जीवित नहीं कर सकती।

इसी प्रकार सुरत का दिमाग से भी कोई सम्बन्ध नहीं हैं। वह दिमाग नही है। दिमाग इसका यंत्र हैं। समय आता हैं जब

शरीर और इन्द्रियों की तरह यह भी निरर्थक हो जाता है। यह दिमाग सब प्राणधारियों में नहीं है मगर वह जीवित हैं और जीवन का खेल दिखाते हैं। यदि सुरत दिमाग होती तो फिर इन प्राणधारियों को जीवित नहीं रहना चाहिये था। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सुरत और वस्तु है और दिमाग और वस्तु है।

इस सन्देश में हमने शरीर में रहकर ब्रह्मांड और आत्मिक मंडलों की सैर की सम्भावना पर लिखा है। आगे हम इस विधि के विषय पर कुछ और वर्णन करेंगे जिसके अभ्यास से आत्मिक उन्नति प्राप्त हो सकती है।

—:o:—

उन्नीसवां सन्देश

योग और तीन बन्द

गुरु नानक साहब की बाणी हैं :—

तीन बन्द लगाय कर, सुन अनहद टंकोर।
नानक सुन्न समाध में, नहीं सांझ नहीं भोर॥

इसी विषय पर सूफी मौलाना रूम का कथन है :—

चश्म बन्द व गोश बन्द व लब बन्द।
गर न बीनी सिर्रे हक वर मन बखन्द॥

सन्तों का योग क्या है ? तीन बन्द लगा देना ! बाहर की तरफ से आंख, जिभ्या और कान बन्द हों, स्वयं असलियत का परदा अन्दर ही अन्दर खुलता चला जायगा।

उनमुन लागी सुन्न में, निस दिन रहे गलतान।
तन मन कुछ सोधा नहीं, पाया पद निरवान॥ कबीर

जिभ्या, कान और आँख तीन ही शक्तिशाली इन्द्रियाँ है जिनका

इस दुनियां में अधिकता के साथ कारोबार रहता हैं। यही मनुष्य को अधिकतर बाहर मुख बनाती हैं। अगर यह काबू में आजायें तो सुगमता से इनका अन्तरमुख होना सम्भव हैं। जब तक यह काबू में न आ जायेंगी ध्यान (सुरत) की धार बार बार बाहर आयेगी और मनुष्य हमेशा दुख में फसा रहेगा। यह मन को बाहरमुखी करती रहती है और मन इसको संसार के गलत झूंठे सुखों में फसाये रखता हैं। मगर क्या उपाय है कि इनसे छुटकारा हाथ आवे। वह यों तो मानने वाली नहीं है। सन्तों का कथन है कि मन रस लेने का आदी हो गया है, बाहर उसको सुख की खोज रहती है, अगर अन्दर इसको वढ़कर सुख मिले तो वह सरलता से उधर से मुड़कर इधर झुक जायगा और जिस समय यह अन्तरमुखी हो जायगा, फिर क्या कहना है! अपने अन्दर के तमाशे इस को व्यस्त रखकर आगे की ओर ढकेलते रहेंगे और इसका पग आगे बढ़ जायगा। जिभ्या बोलती है और रस लेती है, आँख सुन्दर दृश्य देखने को लालायित रहती है, कान सुन्दर राग सुनने के इच्छुक हैं, यह उनको बाहर मिल जाते हैं। आदतें पड़ी हुई है। आदत पर सुगमता से विजय पाना कठिन है; मगर इनके व्यवहार के लिये अन्दर भी यह सामान अधिकता से मौजूद है। जिभ्या अमृत रस पिये और सच्चे नाम का जप बिना हिले किया करे, आँखें अन्तरीय दृश्य देखने का आनन्द उठायं, कान अनहद राग को अपने अन्दर सुनें जो बाहर के बाजों से अधिक सुरीले और रसीले हैं। उनके सम्बन्ध से उनको आनन्द आयेगा। जब एक स्थान पर कुछ दिनों बैठकर अभ्यास करने से इसका साधन हो जाये फिर आगे स्वयं ऊंचे की ओर आकर्षित होना पड़ेगा। बाहर की दशा तो फिर भी मनुष्य को थका देती है। अन्दर थकान नहीं है। हां चित्त की एकाग्रता के कारण घोर निद्रा का भय अवश्य है। उससे अभ्यासी को बचकर चलना है। कुछ लोग इसी को समाधि कहते हैं। यह उन की गलती है। सन्त मत में दूसरी अवस्था का नाम समाधि है जिसको

की कई श्रेणियाँ हैं। निद्रा और आलस्य से जो अभ्यासी बच गया वह धीरे धीरे किसी दिन आनन्द के ऐसे स्थान पर पहुंच जायेगा जहां शुद्ध आत्मिकता है और फिर वहां साधन अभ्यास की आवश्यकता न रहेगी।

जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाय॥

बाहर जिभ्या, आँख और कान सब विचार करने योग्य हैं। जिभ्या बोलती है। बोलते बोलते थक जाती है और हृदय आत्मिकता से खाली हो जाता है, इसकी हालत फिर दयनीय होती है। उपदेशक प्रायः गलती के शिकार होकर भटक जाते है। लोग दूसरों के उपदेश सुनकर प्रभावित होकर अपनी इच्छा शक्ति को हाथ से खो बैठते हैं। दोनों को आत्मिक हानि होती है।

आँख दो प्रकार की सेवा करती हैं। देखती और मन के प्रभाव औरों को देती है और साथ ही दूसरों के प्रभाव को खींचकर मन में डालती रहती है। देखी हुई वस्तु का नक्शा उसके चित्त पर पड़ता है।

कान बाहर की तरफ की आवाज सुनते ही बाहर मुखी बना देता है। अच्छे गीत, सुरीले शब्द, मनोरंजक कहानी, रोमाँचकारी समाचार, हंसी मजाक की बातें उसको अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं।

दुनियाँ में बन्धन का कारण ये तीन इन्द्रियाँ सबसे अधिक हैं। इन तीनों में हर एक या तो अपना मानसिक प्रभाव औरों को देखकर कमजोर कर देता है या दूसरों का प्रभाव लेकर अपनी दशा को बदल देता है। यह न समझो कि केवल जिभ्या ही विचारों को प्रकट करने का यंत्र है। आँख इससे भी अधिक दिल की बात दूसरे के दिल में डाल देती हैं। इसके सिवाय जहाँ किसी चीज की ओर

दृष्टि गयी, आखों में अधिक तेजी और गति आ गयी। तुम स्वयं किसी मुरदा तस्वीर को देखो जिसकी आँखें नहीं बनायी गयीं। तुम्हारा ध्यान इसमें इतना नहीं लगेगा। आँख वाली तस्वीर को देखा नहीं, इसकी ओर आकर्षित हुऐ नहीं। आँख दुनियां में सबसे अधिक जादूगर है। अगर यह चाहे तो बलवान होकर एक दृष्टि से आग लगाये और जान से मार दे। वह स्वय दूसरों से प्रभावित होती है ओर दूसरों को प्रभावित करती है। प्रभावित होने में आँख से अधिक काम कान करते हैं। आदमी किसी वस्तु को देखकर चाहे इतना उसकी ओर न खिच सके किन्तु कान ने आवाज सुनी नहीं कि आवाज की ओर खिचा नहीं। आवाज में विशेष प्रकार की शक्ति है और कान आवाज को सुन कर बहुत ही शीघ्र चित्त को उसी की ओर लगा देता हैं। सपेरे बीन को बजाकर सांप को रिझाते हैं और उसी के राग और आवाज सुना कर उसको पकड़ लेते हैं और दास बना लेते हैं। अभिप्राय यह कि जिभ्या, आँख और कान यह सबसे अधिक फंसाने वाले हैं। हम समझते हैं, उनके विषय में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा।

यही कारण है कि संतों ने इन तीनों इन्द्रियों को कैद (बन्दी) की दशा मे रखने का आदेश दिया है। इसका अर्थ यह कभी न समझना चाहिये कि इनको मारने का तात्पर्य है। नहीं, क्योंकि व्यवहारित जगत में इनसे अधिक आवश्यक और उपयोगी वस्तु दूसरी नहीं है। अभिप्राय यह है कि अभ्यास और आत्मिक उन्नति की दृष्टि से इसमें आत्म-संयम (खुद-जब्ती) और दमन की दशा उत्पन्न की जाय ताकि यह वश में रहें। जब तक इन पर काबू नहीं मिलता मन का स्थिर करना कठिन है। वह चंचल का चंचल बना रहेगा। जिस समय यह वश में आ गये, उस समय सुमिरन ध्यान, भजन सब कुछ बनेगा अन्यथा बैठने को चाहे जहाँ बैठो यह बाहरी जगत के संस्कार मन के अन्दर फुरते रहेंगे

और बाहरी जगत की याद दिला दिला कर चित्त को एकाग्र होने से रोक रक्खगे। उनकी शक्ति का बाहर की ओर बिल्कुल खर्च न होने दो। उनको स्वतन्त्र न छोड़ो और न हमेशा उनके कारण दूसरों के प्रभाव से प्रभावित होकर अपनी इच्छाशक्ति को नष्ट करो। इन तीनों वाक्यों में तीन उद्देश्य बताये गये हैं। इन पर विचार करना आवश्यक है। इन पर विचार करने से संतों की शिक्षा को समझ सकोगे। जिस तरह यह बाहरी जगत में फंसाने के कारण बनते हैं वैसे ही उनसे आत्मा की चढ़ाई के समय सहायता भी ली जा सकती है। सुरत का नीचे के मंडलों की ओर झुकाव क्यों हुआ? केवल बाहरी सामान के सम्बन्ध, तृष्णा और इच्छा के कारण। जब तक इन्द्रियों के रोकने की शिक्षा न दी जायगी वह ऊंचे कैसे चढ़ सकेंगी! यह तीनों इन्द्रियाँ जिनका ऊपर वर्णन हुआ हैं, अनुभव और देखने के बहुत बड़े साधन हैं। जिभ्या, आँख और कान ही सब कुछ हैं और यह उलटने पर अन्दर भी बहुत काम की वस्तु सिद्ध होती हैं बशर्ते कि उनमें सुधार कर लिया जाय। प्रारम्भ में इस शिक्षा की बड़ी आवश्यक्ता पड़ती है ताकि उनका रुझान बाहर की ओर न रहे अन्यथा आत्मिक धार इनके कारण निकलती रहेगी और वह कमजोर बना देगी।

यह भी ख्याल आवश्यक है कि केवल इसी जगत में यह तीनों इन्द्रियाँ काम नहीं देती किन्तु भविष्य में सूक्ष्म मंडल में भी इनकी आवश्यक्ता रहती है। जिसको लोग देवस्थान या देव भूमि कहते हैं वह केवल तुम्हारे स्वप्न की दशा हैं। जब तुम स्वप्नावस्था में जाते हो, तुम भी देवता रूप हो जाते हो। इस मोटे चमड़े के गिलाफ को उतार कर रख देते हो और प्रत्यक्ष में शरीर रहित बन जाते हो। अब बताओ वहाँ आंख कान और जिभ्या की आवश्यक्ता रहती है या नहीं! बोलते हो, खाते पीते हो, देखते और सुनते हो। अगर तुम्हारा विश्वास सूक्ष्म मंडल के जगत और आत्मा में है तो तुम

समझते होगे कि शरीर से अलग हुई आत्मायें भी जब कभी अपने को प्रगट करती हैं तो इन तीनों से काम लेती रहती हैं। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक हैं।

बाहरी काम में इनका अभ्यास बढ़ा चढ़ा होता है मगर अन्तरीय काम या अन्तरमुखी वृति की दृष्टि से इनकी अन्तरीय ध्यान शक्ति सुप्त दशा में पड़ी हुई है। इनकी शक्तियों को शिक्षा द्वारा जाग्रत कर दो। जब वह जाग जायेंगी, अन्तरीय अभ्यास की सच्ची सहायक सिद्ध होंगी।

जिस विधि से तीन इन्द्रियों पर तीन बन्द लगाये जाते हैं वह वह वास्तव में प्रारम्भिक शिक्षा की श्रेणियाँ हैं। जिनको सुमिरन, ध्यान और भजन कहते हैं। जो काम बाहरी रचना में यह करती हैं वही काम उनके सुपुर्द अन्दर भी किया जाता है। जब इनको अन्दर रस आने लगेगा मन स्वयं इस ओर से उस ओर को आकर्षित होगा और उसकी एकाग्रित शक्तियां सुरत के उत्थान की सहायक होंगी।

सहजे ही धुन होत है, हर दम घट के माँहि।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहिं॥

—:०:—

बीसवाँ सन्देश

योग और तीन बन्द

(लगातार)

जिभ्या सुमिरन करे, आँख देखे और ध्यान करे, कान भजन में लगें। इन तीनों इन्द्रियों की तीन धारें उलट कर मन के आधीन होकर एक विशेष केन्द्र पर स्थित हों और एकाग्र होकर कुछ दिनों

वहां ठहरें और तीनों मिलकर एक हो रहें। इसमें त्रिपुटी और एकत्व का रहस्य है। बाहर की ओर मन इन तीनों के मिलने से तीन रूप का हो रहा है। वह तीनों को मिलाकर अपने में एकाग्र कर लो। फिर उसमें शक्ति आ जायगी और वह जहाँ सुरत से मिला, फिर काम सुगमता से बन जायगा।

इन तीनों के तीन कामों के क्रम में चार अवस्थायें प्रगट होंगी प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

उलट कर अन्दर की ओर जाना, बाहरी भोजन या बाहरी सामान से मुंह मोड़कर अन्तरीय भोजन और अन्तरीय सामान से सम्बन्ध उत्पन्न करना प्रत्याहार है। मन चंचल हैं, बाहर निकल भागने की टेव हैं। एक जगह नहीं ठहरता। कभी पाताल को जाता है कभी स्वर्ग की हवा खाता है। शेख चिल्ली की तरह काम करता रहता है। उस को कैसे रोका जाय! सब लोग कहते हैं मन को रोको मगर क्रियात्मक (अमली) विधि और साथ ही साथ सरल ढंग की शिक्षा लुप्त है। रुके भी तो क्यों कर रुके। कहते सुनते जीवन समाप्त होने पर आ गया मगर मन जैसा था वैसा ही रहा। संत मत की यह विशेषता है कि मन के रोकने की सबसे सरल विधि बताता है। जिन के कारण वह बाहर मुखी होता था उन्हीं उपायों से उसको अन्तर मुखी करो। विष ही उलट कर अमृत बन जाय। जो चीज बन्धन का कारण थी वही मुक्ति का कारण है।

जिस समय मन अपनी कला बाजियां भूलकर केन्द्र पर जम कर बैठने लगेगा उसी को धारणा कहते हैं। धारण करना, पकड़ना, ठहराना, ध्यान को जमाना यह कुल शब्द एक ही अर्थ रखते हैं। धारणा शीघ्र नहीं आती। ध्यान की धार को समेटना पड़ता है और उसको एक जगह ठहराना होता है। जब वह कुछ देर के लिये ठहरने लगी वही धारणा हुई। जब उस धारणा की दशा में अधिक घनापन आता गया वही ध्यान है और उसी ध्यान का घनापन समाधि है।

और जब आंख, कान जिभ्या की धारें अभ्यास करती हुई मन में लय होने लगें और मन सुरत में लय होने लगेगा तो एक प्रकार का आनन्द मिलेगा जो इस दुनिया में कहीं दिखाई नहीं देता और दिव्य अन्तः करण की दशा हो जायगी। जब यह दशा प्रतीत होने तो लगे फिर दूसरे केन्द्र पर चढ़ाई करने का विचार हो। आतम पद के आगे ब्रह्म पद हैं। वहां भी सूक्ष्म रूप में वही तमाशे हैं। वहां प्रकृति की धारें अधिक सूक्ष्म हैं। उस केन्द्र (या चक्र) पर भी वही साधन चालू रहे। जब वह विजय हो जाय तो आगे चलने की चिन्ता हो। इसी प्रकार जब तक इष्ट पद तक न पहुँचो यह क्रम बराबर चालू रहे। उपनिषद कहती हैः—

'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधति' उठो, जागो, चलो, जब तक इष्ट पद पर न पहुंचो चैन न लो।

सुरत जिस तरह और जिन जिन धारों पर उतर कर नीचे आई है उन्हीं पर सवारी करते हुये चलना होगा और वही रास्ते आगे आवेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि चढ़ाई का काम कठिन हैं मगर पंथाई या अभ्यासी को दृढ़ता के साथ काम करने में वहाँ के दृश्य और मनोरंजन व प्रसन्नता के सामान मिलते हैं, जिनसे थकान नहीं मालूम होती, मगर यह जरूरी है कि इन मनोरंजन के सामान को भूलकर भी ध्यान न दिया जाय अन्यथा वह अटकावे की सूरत पैदा कर देंगी और यात्री राह ही में मारा जायगा। दृष्टि हमेशा आदर्श की ओर रहे। सुरत का उतार शरीर में दिमाग से होता है। पहली चीज जो बनती है वह सुरत ही है। सुरत धीरे धीरे उतर कर पिंड में आती है और शरीर के अंग और इन्द्रियों और नस नाड़ियों को शक्ति देती हैं। चढ़ाई के समय नीचे की ओर से खिचाव होता है जैसा कि मृत्यु की दशा देखकर अनुभव किया जा सकता है। यही दशा अभ्यास में भी होती है। अभ्यासी इस स्थिति के जानने पर यह परिणाम निकाल सकता है कि उसकी उन्नति हो रही है या नहीं। यदि दशा

उल्टी है तो उसको अधिक मेहनत और लगन से काम करना चाहिये जितनी मेहनत अधिक होगी और लगन तीव्र होगी उसकी उन्नति उतनी ही होती जायगी।

यह विचार की फिलोस्फी नहीं है, यह करनी की फिलोस्फी और क्रियात्मक (अमली) योग है। न बातें बनाओ, न बातों से दिल लगाओ। काम से काम रक्खो। किसी की न सुनो। अपनी सी किये जाओ। सुनने में दूसरों के निकृष्ट विचार ग्रहण करने का भय रहता है। कहने में और बात बनाने में आत्मबल (रूहानियत) से खाली हो जाने का डर रहता है। सावधानी मुख्य है। हां, जब इष्ट पद की श्रेणी में पहुँच हो जाय तब हानि नहीं।

इन तीन बंदों के लगाने से तीन दशाओं का भान होगा। प्रथम अमृत रस मिलेगा जो नया जीवन प्रदान करेगा। दूसरे प्रकाश के जगत से मिलने का अवसर हाथ आयेगा जो तुमको प्रकाशवान करता चलेगा क्योंकि जैसी संगत वैसा हाल। जैसी चिन्ता वैसा ख्याल। तीसरे तुम्हारे अन्दर अनहद राग सुनने में आयेंगे जो आनन्द देंगे और आगे की चढ़ाई में सहायक होंगे। अमृत, प्रकाश, शब्द यही सब सत, चित आनन्द हैं। तुम सत-चित-आनन्द हो। सुगमता से सब गुण बढ़ते चलेंगे। सरल नुसखा संतों ने दिया है। क्यों नहीं इसे ग्रहण करते हो! समय पर इससे सब कुछ हो जायगा। यदि यों ही बातें बनाते हो तो हाथ कुछ भी नही आयेगा चाहे और कुछ हो मगर अनुभव न बढ़ेगा। और अनुभव के न होने से असलियत की सच्ची समझ न आवेगी।

—:o:—

इक्कीसवाँ सन्देश

योग और तीन बंद

(लगातार)

प्रारम्भिक अभ्यास सुमिरन है, फिर ध्यान है, फिर भजन है। भजन का अर्थ यह न समझना कि राग रागिनी का बाहरी दुनिया में गाना है। न इस जुबान से नाम लेना है, न इस आंख से देखना व ध्यान करना हैं, न बाहरी कानों से राग सुनना है। यह तुमको बता दिया गया है कि जुबान, आंख और कान यह मन के बाहरी यंत्र हैं। वाह्य जगत में मन उन्हीं के साथ काम करता है। वह मन ही के वास्तव में बाहरी रूप हैं। मन की वृति सुरत के साथ उन पर उतर आती है तब यह काम करते हैं। उनके अन्तरीय रूप की मन में खोज करो और फिर उन्हीं से काम लेना सीखो और काम में अभ्यास करो ताकि अंदर ही अंदर इनकी उन्नति हो और वह स्थूल से सूक्ष्म बनते जायें। सम्भव है तीनों अभ्यास एक साथ हों। सम्भव है अलग अलग किये जायें। उनमें अन्तिम भजन है। यह शब्द का योग कहलाता है जो सबसे बढ़कर हैं, इसी को सूफी सालिक सुलतानुल-जकार कहते हैं। सचमुच यह कुल अजकार अवाजों का सुलतान है अर्थात् समस्त ध्वनियों या शब्दों में मुख्य है। इसी कारण जहां जहां और जिस जिस जगह तसव्वुफ (ध्यान योग) की शिक्षा दी जाती है वहां अन्त में इसी से काम लिया जाता है। यों तो वेखरी शब्द का और जगह भी रिवाज है। मुद्रा के साधनों में भी शब्द सुना जाता है। प्राण योग में भी शब्द से सम्बन्ध रहता है। नसीरा और सूते सारमदी के अभ्यास में भी साधक यह काम करते हैं मगर संत पद की प्राप्ति जब होगी सुरत शब्द मार्ग से होगी।

इस साधन से प्रत्येक केन्द्र पर चार अवस्थायें प्राप्त होती हैं।

इन के नाम यह हैं:—सालोक, सामीप, सारूप और सायुज्य। केन्द्र या केन्द्र के धनी के लोक में होना सालोक की अवस्था है। केन्द्र या केन्द्र के धनी की निकटता प्राप्त करना सामीप की अवस्था है। केन्द्र या केन्द्र के धनी के रूप में प्रकट होना सारूप अवस्था है। केन्द्र या केन्द्र के धनी में लय होना सायुज्य है।

यह दशा अभ्यासी पर हमेशा आती रहती है। वह अभ्यास के क्रम में उनका अनुभव भी करता जाता है, लेकिन अगर गुरु की सहायता नहीं है तो उन हालतों में भी उसका अटकाव हो जायेगा और वह कहीं का न रहेगा। कुछ लोग इनको मुक्ति कहते हैं। मुक्त तो वह है इसमें सन्देह नहीं मगर मुक्ति की यह अवस्थायें अस्थायी हैं इन में सायुज्य का दर्जा बड़ा है। लेकिन अगर यह दशा नीचे के किसी केन्द्र पर प्राप्त कर ली गई तो फिर उसी में लय होना पड़ेगा और सुरत की धार के नीचे उतरने पर जन्म मरण में आना होगा। मान लो किसी को त्रिकुटी या ब्रह्म पद में लय अवस्था हो गई। ब्रह्म के साथ सूक्ष्म माया हमेशा रहती है। उसमें लय होने से दूसरे कल्प में फिर वही भय रहेगा। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि अभ्यास करते समय अपने व्यक्तित्व (अपनीसत्ता) को हाथ से न दिया जाय।

अभ्यास का अर्थ यही है कि आदर्श या इष्ट पद की कुल श्रेणियों को दृष्टि में रखकर काम किया जाय। सबसे जानकारी हो और गुरु से असली संस्कार लेकर चढ़ाई की जाय। यह संस्कार एक स्थान पर अधिकार कर लेने पर जागते रहेंगे और भावी उन्नति की राह में सुरत को आगे की ओर ढ़केलते रहेंगे। लय होना तो प्रकृति में भी सम्भव है मगर क्या वह स्थायी या अटल स्थिति है। संत मत किसी को जड़ बनाना नहीं चाहता न उसमें जड़ समाधि की मुख्यता पर जोर दिया जाता है। न उसको ग्रहण करने की शिक्षा है। यही कारण हैं कि संत मत का आदर्श सबसे ऊंचा है। प्रकृति में लय होने

का एक दृष्टान्त सुषुप्ति अवस्था में मिलता है। क्या तुम हमेशा उसमें रहते हो या उससे तुम्हारा उत्थान भी होता है ? जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में देखते हो, वही ब्रह्म सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की दशा हैं। जो यहाँ है वही वहां भी है। केवल समय और युग का अन्तर है। यहाँ तुम नित्यप्रति जागते, सोते और लय होते हो। वहां वह दशायें कल्प और कल्पान्तर की होती हैं। केवल इतना भेद है और कुछ भी नहीं।

बाईसवाँ सन्देश

नाम

सुमिरन कहते हैं नाम के जपने को। नाम में यह प्रभाव है कि वह आदर्श के ख्याल को दिल में स्वयं स्थित कर देता है। नाम कहने के लिये नाम हैं मगर विचार के रूप में वह एक वस्तु के असल रूप को दिखाने का प्रबन्ध करता है। सम्भव है कि आपने एक आदमी नहीं देखा है मगर दूसरे के कहने से उसका ख्याल चित्त में बंध गया है। चित्त ने उसके कल्पित रूप, कल्पित आदर्श और कल्पित शक्ति को मान लिया हैं। इसलिये अगर उस आदमी के नाम से बुद्धि से जानकारी का साधन है तो जिस समय उसका नाम लिया जायगा उस की याद दिल में उसी समय आजायगी और उसी प्रकार के विचार को गति देगी जो उसके नाम लेने का उद्देश था। यदि नाम की यह महिमा समझ में बैठ जाय तो मनुष्य सुगमता से समझ सकेगा कि जो लोग हमेशा नाम का जाप करते होंगे वह किस तरह नामी के ध्यान में रहते होंगे।

नीचे हम ख्वाजा मुईउद्दीन चिश्ती अलीउलहमता अजमेरी के एक शब्द या कथन का अनुवाद देते हैं नाम की महिमा की व्याख्या इससे अच्छी करना कठिन काम है और यह सोने की तराजू में तोलने योग्य है:—

(१) मेरा दिल व जान खुदा का नाम ले गया और खुदा के नाम के अमृत ने प्यासों की प्यास बुझादी। (२) अगर तू हमेशा खुदा के नाम के विचार में बैठता रहा है तो तुझको विश्वास होना चाहिये कि तू रात दिन खुदा के साथ बैठा हुआ है। (३) यदि खुदा का दर्शन करना चाहता है तो खुदा के नाम के साथ बैठक कर। नाम के मिलाप में खुदा का मिलाप हैं। (४) तेरे हृदय रूपी शीशे से स्वयं खुदा का नूर (ज्योति) चमक उठेगा बशर्ते कि नाम के प्रकाशवान होने से पहिले शीशे को साफ कर ले। (५) नाम और नामी में कोई भेद नहीं है। नाम के तेज में खुदा का तेज होता है। (६) अगर तू बाँह पर नाम के परो बाल बाँध कर उड़े तो निर्मलता के जगत में ऊंचे लोकों की सैर के योग्य हो जाय। (७) 'मुईन' खुदा के नाम लेने से शोक नहीं होता क्योंकि नाम पर शोक करने से खुदा को शोक होता है।

कैसा अच्छा कथन है और कैसा दिल को लगता है। यह दुनिया नाम और रूप की है जो वस्तु जिससे बनी है, जो वस्तु जिसमें है, क्रियात्मक रूप में शुरू में उसी से सम्बन्ध करने से काम बनता है। स्वयं नाम मन में नामी के ध्यान को स्थित करता है। पहले नाम हैं फिर रूप है इसलिये सुमिरन है। ध्यान जब तक मन में विचार को उत्पन्न न करेगा तब तक ध्यान न किया जायगा और न ध्यान हो सकेगा। जैसे तुमने कहा "गाय गाय" इस अवसर पर चाहे यह शब्द ही शब्द हो मगर इस शब्द ने स्वयं तुम्हारे चित्त में कल्पित रूप से इसका ध्यान बांध दिया और तुम्हारे मन में आप ही आप केवल एक साधारण शब्द के बोलने से गाय के जितने गुण हैं

उसका शारीरिक सम्बन्धों सहित एक विशेष कल्पित ध्यान बन गया। इसी तरह नाम भी और नाम का नियमत रूप से प्रतिदिन सुमरन भी मन के अन्दर नामी के ध्यान को पक्का करता रहता है। नाम पहली सीढ़ी है, ध्यान दूसरी सीढ़ी है। इसलिये पहले नाम ही की व्याख्या होनी चाहिये। नाम दो तरह के हैं:—

एक वर्णात्मक दूसरा धुनात्मक। जो होठ, उच्चारण, वाणी और शब्दों की सहायता से प्रगट किया जाय चाहे वह बंद जिभ्या से बोला जाय, वह वर्णात्मक है। जिसकी केवल धुन सुनी जाती है या सुनाई जाती है, वह धुनात्मक है। एक ही नाम धुनात्मक और वर्णात्मक दोनों हो सकता है, जैसे घंटा बज रहा है। जो आवाज घंटे से आ रही है वह धुनात्मक है। अब यदि तुम उसी आवाज को शब्दों में, वाणी में और लिखावट में लाना चाहते हो तो उसमें तीन बात होंगी—प्रमाण, अनुमान और शब्द। घटे की आवाज को कानों से सुनना प्रमाण है, क्योंकि प्रमाण इन्द्रियों के ज्ञान को कहते हैं। यहां तक तो नाम धुनात्मक है। अब तुम अनुमान करने लगे कि कि आया ऐसा कोई शब्द है या नहीं। यह अनुमान कहलाता है। अनुमान हमेशा पहले अनुभवों और दृश्यों के देखने की सहायता से हुआ करता है। धुन को सुनकर तुमने अनुमान किया और अनुमान करते ही अपने चित्त में उसको रक्खा और फिर उसके अनुसार कोई शब्द गढ़ कर जुबान से निकाला। यह बाहरी जगत का बाहरी शब्द होगा। तुम्हारे अनुमान में घटे की आवाज टन टन के समान है। तुमने विचार किया कि घंटा टन टन बोलता है। अब टन टन घंटे की आवाज का बेरखरी बोली में बेरखरी रूप हो गया। और वही बाहरी शब्द के रूप में प्रकट हुआ। एक दशा ने तीन श्रेणियों में उतार किया और उसके तीन रूप हो गये। और तीन रूप में वह दृष्टिगोचर होती हैं। प्रमाण, अनुमान और शब्द इस शरीर के मंडल में हर जगह काम करते हैं और वह तीन इन्द्रियों कान, आंख और

जुबान को अपनी अभिव्यक्ति का साधन या यंत्र बनाते हैं, मन तीनों में शामिल है कोई ऐसी दशा नहीं जिसमें मन सम्मिलित न हो।

बहुत अच्छा! अब अगर किसी को समझाना चाहो तो टन टन कह दो, वह स्वयं समझ जायगा कि यह घंटे की आवाज है। तीन बातें यहां मौजूद हैं जिनको सुमिरन, ध्यान और भजन कहते हैं। टन टन कहा नहीं कि मन ने घंटे के रूप को अपने अन्दर स्थित किया नहीं और फिर साथ ही साथ उसका ध्यान असली धुन की ओर कल्पित रूप में गया नहीं! यह तुमने अब शायद समझ लिया होगा।

धुन वास्तव में शब्द, अक्षर बाणी आदि से परे की वस्तु हैं। वह जिभ्या से प्रगट होने वाली वस्तु नहीं है। तुम केवल विचार या कल्पना से उसके रूप को प्रगट करते हो और अपनी समझ के अनुसार उसको रूप देते हो।

कहानी है कि चार आदमी किसी बाग की ओर से आ रहे थे। एक पक्षी जिसका नाम पूरब में भुजंगा है, आवाज दे रहा था। यह चारों चार भिन्न २ पेशे के आदमी थे। एक उनमें से साधु था। वह अपने विचार के अनुसार कहने लगा—पक्षी कहता है—'सुहान तेरी कुदरत'। दूसरा बजाज था। वह बोला, पक्षी कहता है—"मलमल लट्ठा कमरक"। तीसरा कुंजड़ा था। उसने कहा, वह साफ कह रहा है—"लहसन प्याज अदरक"। चौथा माली था। वह बोला, यह नहीं! वह कहता है—"आम सेव कमरक"। कमरक कपड़े का और एक फल का भी नाम है। देखो! चारों उनमें से सही थे और चारों ही गलत थे मगर धुन के प्रगट होने की आवाजें उनके विचार के अनुसार थीं। उनकी असलियत से कैसे आपत्ति हो सकती है। जो जैसा होता है वैसा ही समझता है और वैसा ही बोलता है और उसी के अनुसार वह ध्यान में ठीक कहा जा सकता है।

इसी तरह त्रिकुटी के स्थान से जो आवाजें निकलती हैं वह "ओ३म" हैं या ओ३म के रूप की हैं। योगी ने उस स्थान पर चढ़कर उसको उसी ढग पर सुना। फकीर सूफी ने उसको "हू या अल्ला हू" समझा। नानक साहब ने उसको "वाह गुरू" के नाम से प्रकट किया क्योंकि यह सचमुच गुरु का स्थान है। वह आवाज असल में मृदंग की आवाज से अधिक मिलती है। 'धों धों', इसकी बादल की आवाज से भी बहुत कुछ समानता है और इसलिये रामायण के रचियता गोस्वामी तुलसीदास जी ने उसको मेघनाद के रूप में वर्णन किया है। वह लका को अपनी रामायण में कहते हैं वह 'त्रिकूट' में बसा है। यह त्रिकूट ही त्रिकुटी है। साधकों का मार्ग या तरीका किस्सा कहानियों के ढंग में वर्णन किया जाता है क्योंकि असलियत की तरफ थोड़े आदमियों का ध्यान होता है।

बात एक है. वर्णनशैली के ढंगों में भिन्नता है। भिन्नता हुआ करे, हमको उससे क्या लेना है। असलियत या सच्चाई की ओर दृष्टि करने से सार हाथ आता है।

समझे का मत एक है क्या पंडित क्या शेख ।।

यदि तुमको साधकों के भेद से तनिक भी जानकारी है तो तुम इसको सही समझोगे और यदि नहीं है तो यह बातें केवल 'दतकथा' मालूम होंगी। त्रिकुटी की आवाज फिर भी किसी रूप में पूर्ण होती है तो वह केवल 'ओ३म' ही है और इसीलिये संत मत में उसी से सम्बन्ध रखा गया है। वह धुनात्मक नाम है जो वास्तव में वाणी से उच्चारण नहीं होता। केवल चढ़ाई के समय उसका शब्द सुना जाता है। अगर तुम विद्वानों और पंडित के फंदे पड़े तो वह तुमको इस नाम के एक एक अक्षर की व्याख्या में फँसा देंगे। हम भी बहुत दिनों तक इसी जाल में फंसे थे। बाद में गुरु की अपार दया से छूटे हैं।

सबसे पहिली वस्तु जिससे नाम प्रगट किया जाता है, जिभ्या है और जिभ्या ही को पहिले उसकी ओर करके सुमिरन किया जाता

है। जो नाम जैसा है उसका अनुमान करके मन वैसेही वाणी द्वाराप्रगट करने की कोशिश करता है। जैसे घंटे की आवाज को जब कभी किसी भाषा में प्रगट किया जायगा उसी तरह किया जायगा। हम उसको 'टन टन' कहते हैं। जिभ्या तालू से लगकर उसको प्रगट करती है।

जिस समय नाम का सुमिरन किया जाता है विचार स्वयं उसकी ओर चला जाता है और विचार के निरन्तर अभ्यास करते रहने से एक विशेष प्रकार की शक्ति मन में पैदा होती है जो अन्तरीय रूप से अपने अन्दर उसके साक्षात्कार करने की ओर लगी रहती है और अन्त में वह असलियत के परदों को फाड़कर उसका रूप देखती है। उस रूप का देखना ध्यान है जिसका वर्णन हम दूसरे सन्देश में करेंगे।

—:o:—

तेईसवाँ सन्देश

नाम

(लगातार)

संत मत में नाम की बड़ी महिमा है मगर उनके यहाँ जिस नाम पर जोर दिया जाता है वह केवल धुनात्मक नाम है। धुनात्मक नाम निजी (जाती) होते हैं, वर्णात्मक नाम गुणवाले (सिफाती) हैं। संतों के यहां यथा शक्ति निज नाम से ही सम्बन्ध रक्खा जाता है। ओउम् निज नाम है राम निज नाम है आदि आदि। इन सबको केवल पूजा करने वाले गुण बोधक बना डालते हैं और उसकी व्याख्या और गुणानवाद में पृष्ठ के पृष्ठ और किताब की किताब लिख मारते हैं। उनसे हमको झगड़ा नहीं है मगर जो लोग गंथाइयों या साधकों के मार्ग में काम कर रहे हैं उनको इससे बचना चाहिये,

क्योंकि गुण नाशवान हैं। निज स्वरूप (जात) में असलियत है और जब तक असलियत है और जब तक असलियत की ओर ध्यान न जायगा और उससे सम्बन्ध न जोड़ा जायगा तब तक असली लाभ जो नाम का है वह प्राप्त न होगा। नाम लो, नाम का सुमिरन करो, मगर इसको भी जानो कि वह किस स्थान और किस स्थान के धनी का नाम है ताकि विचार की शक्ति और शब्द की शक्ति अपना काम करे और अनुभव के विचार के साथ साथ उस पद का साक्षात्कार भी तो हो सके।

यह तो हमने तुमको पहिले बता दिया है कि नाम लेते ही मन में एक विशेष प्रकार की गति होती हैं मगर दृष्टि को किसी व्यक्ति की ओर और उसमें और उस पर जमाकर जो नाम लिया जाय वह विशेष प्रकार का प्रभाव पैदा करता है। केवल तुम "शिव शिव" कहा करो। यह अवश्य है कि वह धार शिव तक पहुँचेगी मगर कमजोर रहेगी और न जाने उसका क्या प्रभाव हो लेकिन अगर शिव का स्थान समझ लिया गया, शिव का रूप जान लिया गया और उसका निश्चय हो गया कि शिव उस जगह रहते हैं तब शिव का साक्षात्कार करने के विचार से उनका नाम लिया जाय तो तुरन्त नाम का चुम्बकीय प्रभाव शिव को अपना निशाना बनायगा और वह ध्यान देने के लिये विवश होंगे और जहाँ उनका ध्यान गया उनके प्रभाव की धारें तुम तक पहुँचेंगी। बिना पहुँचे न रह सकेंगी। तुम जिसको कुछ देते हो उससे कुछ लेते भी हो। तबादला और बदले का नियम पग पग पर यहाँ काम करता है। जो देगा वही लेगा। जो न देगा वह क्या लेगा। यदि प्रेम देते हो प्रेम मिलेगा। अगर घृणा देते हो घृणा मिलेगी। यह बनी बनाई बात है। इसलिये ऊट पटांग नाम लेने से इतना लाभ नहीं होता। राह, 'रकाना', इष्ट पद और ठिकानों का पहले पता लेलो तब नाम का सुमिरन करो ताकि उसी समय उसका फल मिले। बिना निशाने का तीर हवा में उड़कर

व्यर्थ सिद्ध होता हैं। निशाना ताक कर जो तीर मारा जायगा उसका कुछ प्रभाव होगा। सम्भव है पहिले तीर चूक जाय मगर अभ्यास से कभी न कभी निशाने पर लग ही जायगा और अगर यों ही काम होता है तो भय है। बिना फल के काम से तुम स्वयं घबरा कर उसको छोड़ बैठोगे और कोई लाभ न होगा। आयु बीत जाती है, जीवन समाप्त हो जाते हैं। नाम लेते लेते मनुष्य थक जाता है और कुछ हाथ नहीं आता। इसमें दोष किसका है? जो निरर्थक काम करेगा असफल रहेगा। जो आदर्श और उद्देश की ओर दृष्टि रखकर काम करेगा, सफल होगा। संत मत में इसलिये सतसंग कराकर स्थान की मुख्यता समझा दी जाती है, तब अभ्यास बताया जाता है और अभ्यास करते करते स्वयं नई नई योग्यतायें पैदा होती हैं। अभ्यासी जानता हैं कि उसकी मेहनत फल ला रही है। उसको थकावट और असफलता का भय नहीं रहता। बातें तो पहले ही सब बतादी जाती हैं। हम भी तुमको सारा रहस्य खोल खोल कर जता रहे हैं मगर जब तक तुम्हारा अपना अनुभव न फुरले और स्वयं तुम सचाई (हकीकत) को न देख लो, तब तक हम कभी भूल कर भी तुम्हारा विश्वास न करेंगे, चाहे और कोई विश्वास करले मगर हम न मानेंगे। हां, विश्वास उस समय होगा जब तुम अपनी दृष्टि से हमारी शिक्षा के सार को स्वयं देख लोगे और जहाँ अनुभव शक्ति बढ़ी और राह पर आ गये, किसी श्रेणी का विश्वास प्राप्त हो गया, उस समय विश्वास किया जायगा और विरोधी विचारों के झोंके तुमको इधर उधर न कर सकेंगे। संत मत में यह बात सब को सुना दी जाती है। गुरु नानक देव की बाणी है :—

जब तक देखो न अपने नैना।
कबहु न मानो गुरु के बैना॥

तुम क्या जानते हो, हम क्या कह रहे हैं। हमारा कहा हुआ जब तुम्हारा अपना अनुभव हो जाय तब ठीक बात है। यों तो दुनियां

में बातों और शब्दों का आडम्बर हर जगह मौजूद है इसलिये पहले बुद्धि की तराजू पर तोलते चलो। फिर उसको अपना करो। जब वह तुम्हारा अपना होगा, तुम भी खुश और हम भी खुश। हमारे कहने का कुछ फल हुआ और तुम्हारे पढ़ने और करने का भी फल हुआ।

लेना हो सो जल्द ले, कही सुनी मत मान।
कही सुनी जुग २ चले, आवागवन बंधान ।।

अब अन्तिम बात इस सन्देश की यह है कि नाम किस तरह लिया जाय। यह बात गुरु से प्राप्त होती है। यहां एक सूफी का कलाम नीचे दिया जाता है। उससे स्वयं व्याख्या हो जावेगी :

अमर रब्बे सत रूह व सरें खुदा सत :
ज़िक्र बेकाम व बेजुवां और असत ।।

अर्थ : रूह (आत्मा) खुदा का हुक्म और उसका भेद है। उसका सुमिरन तालू और जुबान के बिना होता है, बात तो सब कुछ कह दी जाती है और कह दी गई है मगर शब्द अभ्यासी को गुरु की जुबान से सुनने पर उसका चुम्बकीय प्रभाव कुछ और ही काम करता है और वह ज्यों का त्यों दिल में उतर जाता है। दूसरों की जुबान और कलम से उसका परिणाम कुछ और का और होता है। कारण यह है कि वह इसका कमाई करता है। जिसने नाम की कमाई की है और साधन सम्पन्न है उसका बचन कुछ और होता है और जो केवल सुनी सुनाई और कही कहाई बात करता है उसका बचन कुछ और होता है।

—:o:—

चौबीसवाँ सन्देश

ध्यान

नाम के साथ रूप रहता है। चाहे यूं समझो कि रूप के साथ नाम रहता है मगर यह बात आवश्यक है कि नाम व्यवहार में पहले आता है और रूप पीछे आता है। नाम यदि नहीं मालूम है तो रूप को देख कर भी रूप वाले का पता नहीं लगता है।नाम यदि मालूम है तो उसकी सहायता से रूप की पहिचान हो सकती है। यह बात हम दुनिया में देखते हैं। यही दशा सूक्ष्म जगत की भी है।

हर इन्द्रिय अपने टिकने का केन्द्र ढूंढती है वह केन्द्र उस को ध्यान की सूरत में मिलता हैं। यूं अंट संट ध्यान नहीं हो सकता। ध्यान जब होगा किसी रूप या किसी स्थान पर ठहरने से होगा। जो सर्व व्यापक का ध्यान करना चाहते हैं उनका प्रयास व्यर्थ जाता है। यहां सर्व व्यापक आकाश है। आकाश की तो साधारण बुद्धि वालों को समझ भी नहीं आती। वह तत्व है। लोग उस को शून्य स्थान समझते हैं। कहां क्या और कहां क्या क्या अभिप्राय और मन्तव्य है और क्या समझा जा रहा है। फिर ध्यान कैसे किया जायगा। शायद कोई यह जबाब दे कि सोचने और चिन्तन का नाम ध्यान है। हम को इस जबाव से सन्तुष्टि नहीं मिलती, न हम उस को ध्यान कहते हैं और न ध्यान समझते हैं। यदि और किसी को सन्तुष्टि मिलती है और वह इस क्रिया को ध्यान कहता है तो कहा करे और किया करे, किसी से लड़ाई झगड़ा मोल लेने का उद्देश्य नहीं हैं।

जिस तरह नाम शक्ति स्वयं नामी का ध्यान दिलाती है इसी तरह रूप शक्ति रूप वाले की विशेषताओं का ध्यान दिलाती रहती है। उदाहरण के रूप में समझो कि एक शब्द घर जुबान पर आया दिल में घर का ख्याल पैदा हुआ। घर के रूप का ख्याल के आते ही

उस के आदि अन्त का विचार स्वयं पैदा होता है और जिस तरह का नक्शा चित्त में समाया है वह मन के अन्दर फुरने लगता है और मन उस में जाने का इच्छुक होता है। घर आईडियल है, आदर्श है। शब्द 'घर' में घर के जितने गुण हैं शामिल होंगे। अब आईडियल होने से वह विस्तृत अर्थों में आगया।

आईड़ियल अर्थात आईडिया ख्याल में रहता है। इसी आईडियल को इष्ट कहते है और इष्ट का ध्यान निष्ठा कहलाता है। इस लिये जिस चीज़ का इष्ट बांधा जाता है या ध्यान किया जाता हैं,वह आरम्भ में चाहे जिस दृष्टि से देखी जाय मगर वह पूर्ण है। वह देश काल, पात्र और विचार से परे है। दृष्टि जितनी उस पर टिकती जायेगी आंख रूहानी(आत्मिक) बनती जायगी और इष्ट का ध्यान भी आत्मिक होता जायगा। उपासना, समीपता का विचार पहले अपने मन से निकालता है। फिर ज्यों ज्यों जो वह इष्ट के निकट होता जाता है, इष्ट के छू लेने या उसके निकट होने पर उस में उसी के गुण आते जाते हैं। यदि शुरू में कुछ कमजोरी रहती है तो वह दूर हो जाती है और उस से एक मिल कर पक्कापन प्राप्त कर लिया जाता है और उसकी सूक्ष्मता और शुद्धता का उत्तराधिकारी हो जाता है और अन्त में उस से मिल कर एक हो जाता है। तब दुई, वियोग और भिन्नता समाप्त हो जाती है।

व्यवहार या साधन इसी तरह होता हैं। तुम ने एक आदमी का नाम सुना। उस के बारे में अनुमानित विचार पैदा हुये। उससे मिले, आंखों से उसका प्रत्यक्ष रूप देखा। फिर प्रत्यक्ष रूप की सहायता से उसके रूप के अन्दर प्रवेश होते चले। यदि उससे सहानुभूति है तो मित्रता हो गई और एकता ने उस के प्रभाव को तुम्हारे अन्दर पहुंचा दिया और तुम स्वयं उसी के रूप बन गये। कुछ आदमियों की दृष्टि इतनी गहरी होती हैं कि चेहरे पर दृष्टि जमाते ही मन उसके मन के अन्दर प्रवेश कर जाता है और समझ लेता है कि यह आदमी इस

विचार का है। बाहरी व्यवहार में भी कभी कभी ऐसा होता है। समझने वाले इस को समझ जाते हैं क्योंकि दृष्टि वास्तव में चेहरे पर पड़ते ही अन्दर धंसती है। चेहरा मन के भावों का प्रतिविम्ब हुआ करता है। उस के देखने से यह पता लगता है कि वह किस विशेषता का आदमी है। जब उस के साथ वार्तालाप का अवसर हाथ आता है तब दोनों के दिल की धारें मिल कर सहानुभूति और प्रेम के नियम के प्रभाव से दोनों को मिला देती हैं। अनुभव इस का साक्षी है कि हम दुनियां में बहुत से आदमियों को देख कर उन की तरफ खिचते हैं। चाहे वह अजनबी हों, मगर उन की सूरत देख कर उनको पसन्द करते हैं। इसके प्रतिकूल ऐसे आदमी भी होते है जिनसे यों ही घृणा होती है। उनकी ओर चित्त आकर्षित नहीं होता। इसमें क्या रहस्य है? रहस्य यह है कि मन अनजाने एक दूसरे के मन में प्रवेश करके अपनी अनुकूलता का सामान पाता है। दूसरे में इस सामान को न देख कर उसकी ओर से मुंह मोड़ लेता हैं। यह बात प्रायः बच्चों में बहुत होती है क्योंकि स्वाभाविक रूप से उनमें अन्तरिक वार्तालाप और लगाव का तत्व रहता है। इसी तरह ध्यान भी उसी का किया जाता है, किया जा सकता है, और किया जाना सम्भव है जिसके साथ सच्ची सहानुभूति और सच्चा प्रेम होता है। इष्ट से हर एक को प्रेम रहता है। यदि प्रेम रहता है तो ध्यान सम्भव है और प्रेम न हो तो ध्यान असम्भव होता है। राह में एक बच्चा खेल रहा है। दूसरा किसी का लड़का मिल गया। देखा न सुना, दोनों मिल गये। गले में बाहें पड़ गई। अब पहला बच्चा दूसरे को अपने घर लाता है और उस के साथ प्रेम का व्यवहार करता है। ठीक इसी तरह इष्ट के ध्यान का हाल है। इष्ट का प्रत्यक्ष रूप अन्तरीय रूप का ख्याल दिलाने वाला और अन्तरीय रूप की ओर संकेत करने वाला होता है और उसी जगह लेजा कर पहुँचा देता है जहां उसका असली रूप

होता है। उस में वाच और लक्ष दोनों सम्मिलित रहते हैं। आरम्भ में देह और देह की इन्द्रियों की सहायता से मिलाप होता है। फिर देह व इन्द्रियों की तरफ से ख्याल हट जाता है। दोनों दिल मिलते हैं और मिल कर एक रूप हो जाते हैं। मिलने का मन्तव्य ही यही हैं। धार्मिक ध्यान तो दूर की बात है, दुनियां की व्यावहारिक दशा को देखो। उस में भी यही दृश्य दिखाई देता है। जहां जी चाहे दृष्टि डालो हर जगह एक सी दशा दिखाई देगी। एक छोटे बच्चे को सांप के साथ प्रेम है। सांप उसके प्रेम की धार से खिंचता है। वह उस के मुंह को पकड़ता है नोचता है खसोटता है। मुंह पकड़ कर अपने मुंह में रखने का इच्छुक है, रख भी लेता है, मगर न साँप उसको काटता है न उस की हानि करता है और हानि क्यों करे? क्योकि दोनों के दिल एक हैं। दोनों विचार और मानसिक रूप से एक जाति हैं। दोनों में सहानुभूति है। असल में दोनों एक स्वरूप है। अपने स्वरूप को कौन हानि पहुँचाता है। इसी तरह मनुष्य के बच्चे प्रायः फाड़ खाने वालों की मांद में पाये गये हैं और पारस्परिक सहानुभूति के कारण बच्चे को हानि नहीं पहुचा सकते। जहां प्रेम होता है वहां दुई नहीं रहती। एकता और समानता हो जाती है।

ध्यान में भी जिस इष्ट का ध्यान होता है वह भी अपना स्वरूप होता है। अगर उस में ऐसा प्रेम नहीं है जो अपने निज स्वरूप के साथ होता है तो वह सच्चा इष्ट भी नहीं है और वह फल भी नहीं देगा। जहां झेंप, दिखावट और अटकाव होगा वहां प्रेम नहीं होगा, इसलिये बार बार कहा गया है कि समझ बूझ कर इष्ट देव से सम्बन्ध पैदा करो। जिस इष्ट में अधिक गहरा सम्बन्ध है उसी रूप से काम और उसी रूप का ध्यान रहे, तब तो लाभ रहेगा अन्यथा प्रेम निरर्थक होगा। अनुभवी महात्मा किसी को अपनी स्त्री के प्रेम में मग्न और खोया हुआ देखकर उसी के ध्यान करने की हिदायत करते हैं। यह केवल आरम्भ की बात होती है मगर आप जानते

हैं स्त्री स्त्री ही है। उसका आईडियल स्त्री ही होगा। अध्यात्म की एक श्रेणी मिल जायगी, इस में सन्देह नहीं मगर वह निचली श्रेणी का होगा और दृष्टि कठिनता से ऊपर चढ़ेगी। हाँ हर बात में अपवाद (मुस्तसना) होते हैं। अपवाद का यहां वर्णन नहीं है और इसी तरह ध्यान के बहुत से ढंग है।

सब से उत्तम और अच्छा गुरू का इष्ट होता है और ध्यान की शिक्षा गुरू पर निर्भर रहती है क्योंकि गुरू का आदर्श दुनिया में सब से ऊंचा सब से बड़ा और सब से लाभदायक हैं। वह शुद्ध आत्मिक हैं औरों में शारीरिकता रहती है। जैसा इष्ट होगा वैसे ही भाव पैदा होंगे। इसलिये अगर ध्रुव पद तक पहुंचने की इच्छा हैं तब तो गुरू का इष्ट मुख्य है। यदि यह बात नहीं है तो जो चाहे वह करो, तुम को अधिकार हैं।

ध्यान के सम्बन्ध में कई बातें विचार करने के योग्य है और विचार करके तब काम करना चाहिये। नाम से अनुमान होने लगता है। नाम लेने से अनुमान की शक्ति फुरती है और वह अनुमान घना होते ही विश्वास की श्रेणी प्राप्त कर लेता है। इसको शब्द-ज्ञान बोलते हैं जिसका जान बूझ कर, समझ कर विश्वास किया जाय वह शब्द-ज्ञान है। नाम लेने से क्या होता है ? सुमिरन से क्या लाभ होता है ? शब्द-ज्ञान का लाभ होता है। नाम रूप के दिखाने का साधन है। एक सूफी के कथन के अनुवाद से उसकी अधिक व्याख्या होगी। वह कहते है। "मन में सोच विचार करो। सोच विचार से हृदय का दर्पण साफ होगा। धीरे धीरे निर्मलता आती जायेगी (उस समय रूप दिखाई पड़ेगा) विश्वास की शक्ति कल्पित आवरणों (पर्दों) को टूक टूक कर देगी। आवरण दूर हो जायेंगे और मालिक का तेज दृष्टि गोचर होगा।'

रूप के देखने का साधन नाम है। जिस समय नाम लेते रूप पर दृष्टि पड़ने लगी उस का ध्यान होने लगेगा। नाम से ध्यान को

गति देता है और जब रूप दिखाई पड़ेगा। उसको इस तरह साक्षात्कार कर लिया मानो आँखों से देखा है। वह अनुमान-ज्ञान कहलाता है, ऐन आंख को कहते हैं। यह प्रमाण है। इन्द्रियों का ज्ञान प्रमाण कहलाता है। यह दूसरी श्रेणी है मगर अभी तक असली ठिकाना हाथ नहीं आया। जब रूप का ध्यान करते करते वह रूप अपने असली रूप को दिखाने लगा वह हक़ (सत) होगा और जब वह दिखाई आ गया और दुई का परदा हट गया तो वही प्रमाण-ज्ञान हो गया जिसका वर्णन भजन के संदेश में किया जायेगा।

तीन बातें हुईं—शब्द, अनुमान, प्रमाण। होना तो चाहिये, प्रमाण, अनुमान और शब्द, मगर यहां इसी तरह बतलाना है, वह यों है। गुरु मुख से शब्द सुना। बिना सुने विचार को गति नहीं मिलती। न किसी बात का पता लगता है। शब्द से यहाँ अभिप्राय उस शब्द से नहीं है जो संतों के यहाँ "अनाहत शब्द या अनहद शब्द" कहलाता है। प्रारम्भिक शिक्षा शब्द से शुरू होती है। धार्मिक जगत का रचने वाला गुरु है। गुरु की सहायता के बिना हमको मालूम करने होगा कि अप्रतियत क्या है? शब्द में नाम है, नाम में अनुमान है और अनुमान की चोटी पर प्रमाण है। बात सुनी, विचार किया, परिणाम पर पहुँचे, यह तीन श्रेणियां हैं। सुना जाता है गुरु से, अनुमान किया जाता है मन से और प्रमाण प्राप्त किया जाता है 'दिली आँख' और मन की शक्ति से।

दुनियाँ का साधारण ज्ञान प्रमाण अर्थात् इन्द्रियों के ज्ञान से शुरू होता है। फिर उसकी सहायता से बहुत सी बातों का अनुमान किया जाता है और जब उस पर किसी और की साक्षी या गवाही मिलती है तब विश्वास पक्का हो जाता है मगर धार्मिक जगत की चाल उलटी है। यहाँ सबसे पहिले गुरु का शब्द मुख्य है और उसी पर अनुमान किया जाता है। फिर मानसिक और बौद्धिक उन्नति करके उसको अन्तरीय आंख से देखा जाता है। यह प्रमाण है।

दुनियाँ प्रवृति है। धर्म निवृति है। इन दोनों में यह भेद है। अगर इसको अच्छी तरह समझ लिया जाय तो फिर झगड़ा नहीं रहता और अगर शब्दों पर अटके तो झगड़ा बना बनाया मौजूद है।

इन्द्रियों के समस्त ज्ञान को गुरु के शब्द के आधीन बनाओ। सुनो वह क्या कहते है। फिर उसको अनुमान से समझो। यह सुमिरन है और अनुमान करते हुऐ अन्तरीय इन्द्रियों से विशेषकर आंखों से देखो ! यह प्रमाण है।

जब तक स्वयं न देखो तब तक प्रमाण भी प्रमाण नहीं है। न उसकी कोई मुख्यता है। जब तक आँख से न देखो उसका विश्वास न करो। यह ध्यान है और यह ध्यान से प्राप्त होता है। अभी आगे भजन की श्रेणी दूर है।

इनके तीन रूप और हैं—श्रवण, मनन, निदिध्यासन। शब्द का सुनना 'श्रवण' हैं, सुमिरन करना 'मनन' है और ध्यान करना निदिध्यासन है। इन तीनों के परे साक्षात्कार है जो भजन से प्राप्त होगा। श्रवण और मनन दोनों नाम में हैं, निदिध्यासन ध्यान में है और साक्षात्कार भजन में है।

अकसर नूर या प्रकाश के ध्यान का उपदेश किया जाता है, वह किसी सीमा तक ठीक हैं मगर प्रकाश (तेज) प्रकाश ही है। चाँदनी में चोर चोरी करता हैं और जुआरी जुआ खेलता है। वह किसी को रोक नहीं सकती। इसलिये सच्चा ध्यान गुरु का होना चाहिये ताकि आगे रास्ता खुले। अटकाव न होने पाये। गुरु हड्डी और चमड़े का संगठन नहीं है। वह कोई और ही वस्तु हैं जो इन सब से परे हैं। उसका असली रूप तुम्हारे अन्दर हैं। अन्दर ही उस का ध्यान होता है और ध्यान होने पर नई नई योग्यताओं की धारें अन्दर ही अन्दर फुरती हैं और वह साक्षात्कार की श्रेणी प्रदान करती हैं।

जब नाम लिया गया तब नामी की खोज हुई। उसी खोज

का नाम ध्यान हैं। अब सम्भवतया कुछ कुछ ध्यान की समझ आगई होगी इसलिये अब हम दूसरे सन्देश में तुमको भजन और भजन का असली मन्तव्त समझाने का प्रयास करेंगे।

—:०:—

पच्चीसवाँ सन्देश

भजन

जो काम नाम ने दिया वही ध्यान ने दिया। नाम मन में स्थित हुआ, मन से चित्त की वृत्ति धार रूप होकर निकली, रूप में जाकर ठहरने का यत्न किया। जिस समय उस में ठहरी तुरन्त उस जगह से शव्द की धार प्रगट हुई। उसी शव्द का सुनना भजन कहलाता हैं। शब्द सृष्टि में भिन्न २ रूप के हैं। क्योंकि हर जगह किसी न किसी रूप की गति है और गति से आवाज़ पैदा होती है मगर हर एक व्यक्ति प्रत्येक आवाज़ को नहीं सुन सकता। तुम ने चीटियों की ओर उंगली की। उंगली करने या दिखाने में शब्द है। तुम उस शब्द को सुन नहीं सकते मगर चींटी सुन सकती है।

आंख उस वस्तु को देख सकती है जो आंख के अनुकूल क्षेत्र की हो। कान उसी शब्द को सुन सकता है जो कान के अनकूल क्षेत्र का हो। यदि वह शब्द अधिक सूक्ष्म या अधिक स्थूल हो तो वह सुना नहीं जायगा। जिस तरह बारीक वस्तु पकड़ने के लिये बारीक यंत्र होना चाहिये और मोटी वस्तु के लिये मोटा यंत्र होना चाहिये, इसी तरह सूक्ष्म शब्द सुनने के लिये सूक्ष्म कान और सूक्ष्म वस्तु देखने के लिये सूक्ष्म आंखें होनी चाहिये। कलम चल रही है। तुम को आवाज़ नहीं मालूम होती लेकिन अगर कोई सूक्ष्म यंत्र कलम के साथ लगा कर कागज़ की सतह पर उस को गति दी जाय तो कान में उस सूक्ष्म

और शक्तिशाली यंत्र के कारण विशेष प्रकार की शक्ति आ जायेगी और उसको सुन लेगा और आश्चर्य करेगा। इसी तरह आंख बहुत दूर की चीज को नहीं देख सकती, लेकिन अगर कोई सूक्ष्म और अधिक शक्तिशाली शीशा आंखों से लगाया जाय तो वह दूर की चीज का अनुमान कर सकेगी। इस से प्रकट है कि जब तक इन्द्रियों को किसी विशेष क्षेत्र के साथ एकता होने का सामान न मिले तब तक वह उस क्षेत्र के दृश्य देखने और वहां की आवाज सुनने के योग्य नहीं होतीं।

आवाज तो हर जगह हो रही है। रग रग और नस नस में आवाज है, क्योंकि सुरत की धार हर जगह चालू होकर उस को जीवन दे रही है और उस की गति के कारण से आवाज है मगर हर आवाज के सुनने से उतना आत्मिक लाभ नहीं होता। यदि स्थूल पदार्थीय कोठरी के शब्द को सुना जायगा तो पदार्थ का प्रभाव हम में भी होगा। इस लिये जहां संत मत में अंतरीय आवाज सुनने का आदेश है साथ ही उस आवाज के केन्द्र उसकी खास धार और उसकी विशेषता का ध्यान रख कर सुनना होता है। सम्भव है बहुत सी आवाजों का मेल हो। सब आवाजों में से केवल उस आवाज की धुन को छांट लेना चाहिये जिस की शिक्षा दी गई है। शेष को त्याग देना चाहिये अन्यथा लाभ न होगा। जहां और जिस मण्डल की आवाज होगी वह वहां का प्रभाव रखती होगी और यदि किसी ने बिना समझे बूझे उस से चित्त लगाया तो वह विशेष प्रभाव और विशेष दशा का पैदा करने वाली है। ऊपर से जो शब्द आते है वह सूक्ष्म होते हैं, शाँति देते हैं। इधर उधर के शब्द भटका देते हैं। कुछ अभ्यासी जो गुरु से बिना भेद लिये अभ्यास करते हैं, वह अपनी भूल का फल भोगते हैं। ऐसे मुंह के बल गिरते हैं कि फिर संभलना कठिन होता है और फिर चढ़ाई के योग्य नहीं रहते क्योंकि यह नियम हर एक व्यक्ति को मालूम हैं कि जो जिस मण्डल की जिस धार से सम्बन्ध जोड़ेगा उस को उसकी सूक्ष्मता व स्थूलता मिलेगी। यदि शब्द सूक्ष्म मण्डल

का है तो सूक्ष्मता देगा और यदि स्थूल मण्डल का है तो स्थूलता देगा सांसारिक वासनायें जागेंगी, इच्छा और चाह बढ़ेगी और अभ्यासी मारा जायगा इसलिये आवश्यक है कि काम सोच समझ कर किया जाय। सुल्तान-उल-ज़कार का एक शागिल सूफी (शब्द अभ्यासी सूफी) कहता है:-"आकाश को पाँव तले लाकर कान से शब्द की धुन सुनो। जो आवाज तुम को ऊपर की तरफ खींच ले जाय ऊपर के लोक की आवाज है और जो आवाज लालच पैदा करे वह ऐसे फाड़ खाने वाले भेड़िये (शैतान) की आवाज है जो दुनिया को फाड़ खाते हैं"।

यही शब्द जो हमारे अदर घट में पैदा होते हैं धुनात्मक नाम कहलाते है और संत मत में इन्ही की महिमा हैं। यह शब्द दो प्रकार के होते हैं एक आत्मिक शब्द और दूसरे मानसिक और स्थूल। पहला अंतर मुखी बनाता है एक में सिमटाने की शक्ति हैं, दूसरे में बखेरने की शक्ति हैं। एक में चुम्बकीय शक्ति है, दूसरी ध्यान को बखेर देती है। सत्ता और जीवन का असली तत्व सुरत में है। मन और पदार्थ (माद्दा) उस के जीवन से जीवित होकर वाह्य जगत में अपने मांगे हुये अस्तित्व का खेल दिखाते है। इसलिये सुरत ही केन्द्रीय शक्ति है। एक जलते हुये दीपक का उदाहरण ले लो। असलियत यदि कहीं है तो उसके केन्द्र में हैं। जिस समय दीपक जलता होता है वह काले और भूरे रंग के परदों को बाहर फेंकता हैं। यह माया और मन से तुलना किये जा सकते हैं और सफेद प्रकाश सुरत के समान कहा जा सकता है। दृष्टान्त का केवल एक ही अंग लेना चाहिये अन्यथा कुल को ग्रहण करने में कठिनाई होगी।

जो शब्द जिस मण्डल से निकलता है वह उसी की सूक्ष्मता और स्थूलता का गुण अपने साथ रखता है और जिन पर उनका प्रभाव पड़ता हैं वह उस प्रभाव के ग्रहण करने के अनुसार उससे प्रभावित होते हैं। यों समझो कि दयालु और सहानुभूति वाले मनुष्य

की दृष्टि और वचन में ऐसा प्रभाव होता हैं कि वह सुनने वाले की दशा को बदल देता है क्योंकि उनकी धुर विशेष प्रकार के मण्डल से आती हैं। इस तरह अच्छे उपदेशक के वचन में जादू का प्रभाव ह ता है। उसका उपदेश सुन कर हम लटट हो जाते हैं क्योंकि उसके मन की धार उस जगह से मिलती हुई है जहां इस प्रकार के गुण हैं।

शब्द में बड़ी शक्ति होती हैं। बाहरी जगत में बुरी बात सुन कर लोग आत्महत्या कर लेते हैं। अच्छी बातों से टूटे हुये दिल जुड़ जाते हैं। फकीरों की बातें सुन कर लोग राज पाट छोड़ बैठते है जो जैसा है उस की बातों में वैसा ही प्रभाव होता हैं।

जब वाह्य जगत के बाहरी शब्द में यह शक्ति है तो तुम सरलता से समझ सकते हो कि अंतरीय आत्मिक शब्द की शक्ति कैसी कुछ होगी।

जब अभ्यासी को सुमिरन और ध्यान में कुछ उन्नति प्रतीत होने लगे तो उसको अपने अन्तरीय शब्दों को सुनना चाहिये जो मस्तिष्क के विशेष केन्द्र से निकलते हैं। वह उस को अन्दर की ओर खीचेंगे और वहां से ज्ञान के कौंधे दिखाई आयेंगे जिन को देख कर वह अचम्भे में हो जायगा। वह स्वयं अभ्यासी को अपनी ओर आर्कषित कर लेंगे। वह उन में इतना मग्न होगा कि अपनी आस पास की दुनियाँ को भूल जायगा। अन्तरीय आत्मिक शब्द अत्यन्त आकर्षक और मनोहर होते हैं। मौलाना रूम कहते हैं कि अगर इन रागों या शब्दों की हम थोड़ी सी भी व्याख्या करें तो मुर्दों की आत्मा कब्र को चीर कर बाहर निकल आयेगी। कान को पास में करो। वह तुम से दूर नहीं है, लेकिन इस तरह कहने का नियम नहीं है।

जिस तरह सुमरन, ध्यान और भजन प्रथम मण्डल से आरम्भ करके समाप्त किया गया वैसे ही दूसरे मण्डल पर भी अभ्यास करना

होता है। हां, उसकी शकल दूसरी होती है क्योंकि सुरत जितनी ऊपर चढ़ती जायगी वह उतनी ही सूक्ष्म होती जायगी और उतनी ही उन्नति करने के योग्य बनेगी। और भी इसी तरह समझ लो।

श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार सब मण्डलों में करना पड़ता है। पिंड में पिंडी मन तीन इन्द्रियों के साथ करता है। ब्रह्मांड में बड़ी सूक्ष्म होकर सूक्ष्म इन्द्रियों से करता हैं। आत्मिक मण्डल में आत्मा उन्नति करके असली तत्व, निज धाम और राधा स्वामी भंडार में पहुचती हैं तब इनकी आवश्याकता नहीं रहती। शब्द सार शब्द में विलय होकर काल के चक्र से परे पहुँच जाता है, जहाँ न सोच विचार है न भजन पूजा है।

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, ताहि काल नहीं खाय॥

वह क्या हैं कहने में नहीं आता। जो हैं वह हैं इससे अधिक कहा नहीं जाता और न कुछ कहा जा सकता हैं क्यों कि वहाँ विचार नहीं जाता।

—:०:—

छब्बीसवाँ सन्देश

शब्द

शब्द क्या है? शब्द आकाश का गुण, आकाश का तत्व और आकाश का सूक्ष्म रूप कहा गया है। शब्द इससे भी अधिक कुछ और है। वास्तव में यह रचना में सब से पहला और सब का पैदा करने वाला है और कोई स्थान ऐसा नहीं है जहां वह न हो। वह सब रचना की जान है।

संतों के मार्ग में इसी कारण शब्द की महिमा बहुत की गई है

और जहा जहां (ध्यान) की शिक्षा होगी वहां वहाँ उस का गीत गाया जायगा। यह सब कुछ है और सब कुछ उस के आधार पर है। यह तो सब को मालूम है कि जहां गति होती है वहां शब्द अवश्य होता है। जहां अनुकूल और प्रतिकूल, धनात्मक व ऋणात्मक धारें एक दूसरे से मिलेंगी उन का मिलान शब्द से रहित नहीं होगा। शब्द के बिना कोई गति नहीं होती लेकिन अगर ध्यान पूर्वक बिचार किया जाय तो गति का कारण भी शब्द ही है। जब यह गुप्त दशा में रहता है तब अनाम कहलाता है और जब प्रकट होता है तब शब्द कहलाता है।

सार बचन राधास्वामी पद्य में उस के बिषय में यों कहा गया है:-

सब की आदि शब्द को जान।
अंत सभी का शब्द पिछान॥
तीन लोक और चौथे लोक।
शब्द रचे यह सब ही थोक[1]॥ हद[1]
शब्द सुरत दोऊ धार समान।
पुरुष अनामी के यह प्राण॥

-:०:-

शब्द गुप्त तब रहा अनाम।
शब्द प्रकट तब धरिया नाम॥
नाम अनाम शब्द पहचान।
शब्द बिना होय सब की हान॥

-:०:-

शब्द ही कारन शब्द ही काज।
शब्द रचाया सारा साज॥

-:०:-

शब्द से सुरत सुरत से शब्द ।
शब्द ही सत्त नाम सत शब्द ॥
ओम शब्द निरंजन शब्द ।
ब्रह्म शब्द और माया शब्द ॥
ओत पोत यों शब्द ही शब्द ।
ऊँच नीच दोऊ शब्द ही शब्द ॥

-:०:-

शब्द ही सेवक शब्द ही स्वामी ।
शब्द ही घट घट अन्तरयामी ॥

-:०:-

शब्द गुरू और शब्द ही दास ।
शब्द बिना झूठी सब आस ॥
शब्द हीं मछली शब्द ही नीर ।
शब्द ही बखाने सत्त कबीर ॥
शब्द बतावें 'नानक' पीर ।
शब्द लखावें 'तुलसी' धीर ॥

-:०:-

शब्द शाह और शब्द वजीर ।
राधास्वामी कहें सुनो मेरे पीर ॥

कोई सम्प्रदाय ऐसा नहीं है जो शब्द की महिमा का राग न गाता हो। वेदों में शब्द को ब्रह्म कहा है। मसीह के अंजील की शुरू की आयतों में आया है—"शुरू में शब्द था, शब्द ही मालिक था, शब्द मालिक के साथ था, उसी ने सबको पैदा किया।" आदि। मुसलमानों में भी कहा जाता है कि जिस शक्ति से रचना हुई वह शब्द ही था।

एक दो नहीं सैकडों और हजारों प्रमाण दिये जा सकते है मगर चूंकि सब शब्द के अभ्यास से रहित हो गये हैं इसलिये वह

दयाल फकीर कृत पुस्तकें

मानव धर्म प्रकाश हिन्दी	-७५	विश्व धर्म भाग १	-७५
" " " उर्दू	१-५०	" " " २	-५०
आवागवन उर्फ) हिन्दी	१-७०	सार का सार भाग १,२	२-७५
जीवन रहस्य) उर्दू	-७५	सचाई उर्दू या हिन्दी	-४०
विश्व शान्ति	-२५	निष्कलंक अवतार हिन्दी	-५५
मनुष्य बनो हिन्दी	-६५	मानव कल्याण भाग १	-६०
" " अंग्रेजी	-४०	" " " " २	१-५०
सार भेद	-२५	" " " ३,४,५ प्रति	१-००
जगत कल्याण हिन्दी	-७५	गरुण पुराण रहस्य	१.००
" " उर्दू	१-५०	अद्भुत मोती	
जगत उभार	१-००	आजादी की कुन्जी	
आकाशीय रचना	-५०	गुरु बन्दना	
फकीर वचनामृत	-४०	कबीरसार शब्द व्याख्या	
राधास्वामी शताब्दी पर मेरी भेट भाग १—२	२-२५	शिव फकीर पत्रावली	
कर्मभोग या मौज भा० १,२	१-७५	हृदय उद्गार	
५० वर्षीय फकीर अनुभव	-५०	अगमवाणी १, २,	
सत सतगुरु वक्त	१-५०	सुरत शब्द योग)	
उन्नति मार्ग	-२५	सत सनातन धर्म)	

महर्षि शिवब्रतलाल कृत मुख्य पुस्तकें

सम्पूर्ण महारामायण सजिल्द	६)	शरणागति यो	
श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम भाग	१-२५	उपासना योग	
नानक योग ३ भाग सजिल्द	४)	आनन्द योग प्र	
राधास्वामी योग ६ भाग सजिल्द	५)	Light on A	
कबीर योग प्रथम भाग	२)	आत्मिक प्राय	
" " द्वितीय "	१-७५	कबीर आद्य	
" " तृतीय "	१-५०	सत कबीर	

मैनेजर

शिव साहित्य प्रकाशन मण्डल

पो० दयाल नगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)

सतीशचन्द्र मीतल द्वारा दयाल प्रिन्टिंग प्रेस, लेख

Registered No. L...

महर्षि शिवव्रतलाल कृत हिंदी पुस्तकों की सूची

सम्पूर्ण महारामायण सजिल्द	६)
श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम भाग	१-२५
नानक योग ३ भाग सजिल्द	४)
राधास्वामी योग ६ भाग सजिल्द	५)
कबीर योग प्रथम भाग	२)
" " द्वितीय "	१-७५
" " तृतीय "	१-५०
गति योग	-७५
ा योग	-५०
	-५०
प्रकाश	२-५०
Anand yog	३)
	-५०
काश	२-००
स	
	१-००
	१-००
	१-७५
	२-६०
	१-५०
	१-६०
	१-७५
	१-५०
	२-२५

झलकदार मोती	२-००
गिरहदार मोती	१-००
शाहवार मोती	१-००
रंगदार मोती	२-५०
दलदार मोती	२-७५

पाठ तथा गाने के शब्द

फकीर भजनावली	१-००
शब्द गुन्जार भाग १, २ प्रति	१-००
नन्दू भाई की साखी	१-०
कबीर गूढ़ शब्द व्याख्या	१-०
कबीर शब्दावली	-७५
नैयर आजम प्र० भा०	१-५०
सत कबीर की साखी	१-०
पिंगल साखी	-६
स्वास्थ्य और भोजन	१-००
रा०स्वा०मतप्रकाश वचनमार	१-००
जीवन सुधार	१-२५
अन्तर्मुखी	-५०
अनमोल उपदेश	१-००
विचार दर्पण	१-००
विचारशक्ति अथवा मनोविज्ञान	१-५०
विवेक कल्पद्रुम	१-५०
जैन वृतान्त	-६०
नवजीवन सुधार	-५०

मिलने का पता सम्पादक

न मण्डल शिव साहित्य प्रकाशन मण्डल

(उ० प्र०) लेखराज नगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)